विज्ञान के पथ पर

श्री पुरुषोत्तमदास स्वामी
एम् एस्-सी विशारद

बीकानेर
नवयुग-ग्रन्थ-कुटीर

प्रथम बार १०००

५-२-१९४१

प्रकाशक

शंभूदयाल सक्सेना

नवयुग ग्रन्थ कुटीर

बीकानेर

मुद्रक

मेठिया प्रिन्टिंग प्रेस

बीकानेर

दो शब्द

आजकल विज्ञान का जमाना है। वर्तमान युग में विज्ञान के मोटे-मोटे सिद्धांतों से अनभिज्ञ रहना उन्नति की दौड़ में पिछड़ना है। कई लोगों का कथन है कि विज्ञान मनुष्य को विनाश की ओर अग्रसर करता है। विज्ञान के आराधकों में आप को एक भी आदमी ऐसा नहीं मिलेगा जो शांति प्रिय न हो। भयंकर विस्फोटक पदार्थ-नाइट्रोग्लिसरीन के आविष्कारक आल्फ्रेड नोबल का यह उद्देश्य कभी न रहा होगा कि उनके द्वारा आविष्कृत विस्फोटक पदार्थ का उपयोग मानव-संहार के लिये किया जाय। ये वही आल्फ्रेड नोबल थे जिन्होंने नोबल पुरस्कार की निधि स्थापित की, जिससे प्रति तीसरे वर्ष विश्वशांति के लिये पुरस्कार• दिया जाता है। विज्ञान का उद्देश्य सत्य की खोज करना है। "सत्य शिवं सुंदर" उसका एक मात्र ध्येय है। यह दूसरी बात है कि लोग विज्ञान की खोजों से लाभ उठा कर उनका दुरुपयोग करें।

इस महान् उद्देश्य को पूरा करने के लिये संसार के बड़े बड़े वैज्ञानिक जुटे हुए हैं। विज्ञान के पुजारी कभी दुराग्रही नहीं होते। यदि उन्हें आज यह विश्वास हो जाय कि जो कुछ उन्हें मालूम है वह सत्य से कोसों दूर है तो उन्हें अपने सिद्धांतों को छोड़ने में तनिक भी हिचकिचाहट न होगी। सत्य की खोज में वे अपने प्राण तक देने को सदैव तत्पर रहते हैं। विज्ञान के आराधकों का उद्देश्य धन अर्जन करना नहीं है। 'सर्वे गुणा कांचनमाश्रयते' में उनका विश्वास नहीं। विज्ञान के लाडले अधिकतर लक्ष्मी के कृपा-पात्र नहीं होते। वे अपने आविष्कारों का बहुत कम पेटेंट लेते हैं। धन की अपेक्षा कीर्ति को वे अधिक महत्व देते हैं।

हिंदी साहित्य में वैज्ञानिक पुस्तकों का बड़ा अभाव है। विद्यार्थियों और जन साधारण के लिये ऐसी पुस्तकों की बड़ी आवश्यकता है जिन में सरल भाषा में विज्ञान के विभिन्न अंगों का नये ढंग से रोचक वर्णन हो। लेखक का

यह प्रयास इस कमी को कुछ अंशों में दूर करने के लिये है। पुस्तक में यथा-स्थान विज्ञान के आराधकों की जीवन गाथायें भी दी गई हैं जिससे वह अधिक मनोरंजक हो सके और हम यह जान सकें कि उन्होंने हमारे जीवन को सुख मय बनाने के लिये कितने कष्टों का सामना किया था। इस पुस्तक को लिखने के लिये पूज्य जनों का आदेश एवं मित्रों का बड़ा अनुरोध था। अत यदि यह पुस्तक अपने उद्देश्य में कुछ भी सफल हुई तो उसका सारा श्रेय उन्हीं को मिलना चाहिये। लेखक तो एक निमित्त मात्र है।

आशा है, यह पुस्तक पाठकों का मनोरंजन करने के साथ साथ उनकी रुचि को विज्ञान के अध्ययन की ओर प्रवृत्त करेगी। यदि ऐसा होसका तो लेखक अपने को कृतार्थ समझेगा।

शान्ति आश्रम बीकानेर
वसन्त पंचमी '६७

पुरुषोत्तमदास स्वामी

विषय सूचनिका

प० तारकनाथ मुकर्जी, बी एस-सी, एल् टी

समर्पण

परम श्रद्धास्पद माननीय गुरुदेव
स्व० पं० तारकनाथ मुरुर्जी, बी०एस्-सी०, एल्०टी०,
भूतपूर्व वाइस-प्रिंसिपल, डूँगर कॉलेज, बीकानेर
की पवित्र स्मृति में उनके एक
प्रिय शिष्य की श्रोर से
साञ्जलि समर्पित।

—

ॐ तमसो मा ज्योतिर्गमय ।
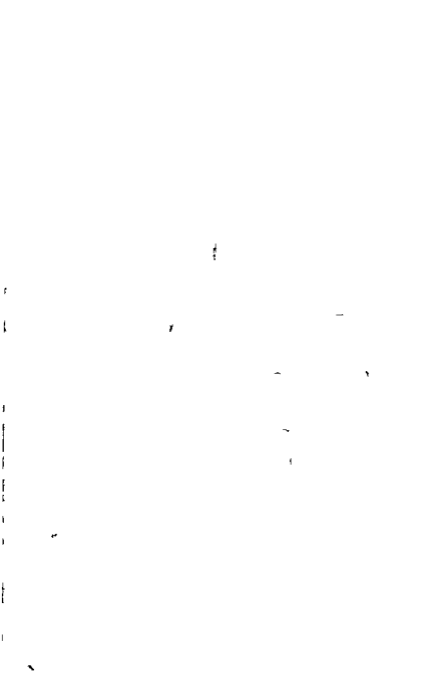
विज्ञान के पथ पर

विज्ञान की आराधना

प्लेटो और अरस्तू यूनान देश के प्रसिद्ध दार्शनिक थे। अरस्तू ने वस्तुओं का कुछ ऊटपटांग सा वर्णन किया है। यह वर्णन सुनी सुनाई बातों पर निर्भर है। प्रयोग द्वारा परीक्षा करने का उसने कभी प्रयत्न नहीं किया। यह सब होते हुए भी अरस्तू संसार के गिने चुने विद्वानों में से एक है। वह एक बड़ा भारी दार्शनिक तो था ही उसके अतिरिक्त जीव विज्ञान का अच्छा ज्ञाता भी था।

जब इसके भ्रामक सिद्धांतों का लोगों ने खंडन करना शुरु किया तो अरस्तू के अनुयायी इसे न सहन कर सके। सोलहवीं शताब्दी के अंत में जेनेवा के निवासियों ने यह घोषणा की कि साहित्य और विज्ञान के किसी भी अंग में भविष्य में कोई भी अरस्तू के सिद्धान्तों के विरुद्ध न तो कभी लिखेगा और

न कभी प्रचार करेगा । इस आदेश को विज्ञान का आधुनिक विद्यार्थी कभी नहीं मान सकता । ज्ञान निरन्तर बढ़ता रहता है । उसे एक घिरे हुए दायरे में बंद कर लोगों को सत्य से वंचित करना है ।

अरस्तू का कहना है कि भारी चीजें हलकी चीजों की अपेक्षा जल्दी गिरती हैं । यह कथन कहाँ तक सत्य है इस बात को न तो अरस्तू ने, और न किसी और ने प्रयोग द्वारा जानने का प्रयत्न किया । विज्ञान के सिद्धान्तों से अनभिज्ञ बहुत से लोग अब भी यही कहेंगे कि एक भारी चीज एक हलकी चीज की अपेक्षा पृथ्वी पर पहले गिरेगी ।

गेलेलियो इटली का रहने वाला था । उसका जन्म सन् १५६४ म पिसा नगर में हुआ था । उसने पहले स्थानीय विश्व विद्यालय में औषध विज्ञान का अध्ययन शुरू किया । पर उसका मन औषध विज्ञान से कोसों दूर रहता था । उसकी गणित और भौतिक विज्ञान म बड़ी दिलचस्पी थी । वह स्कूल में औषध विज्ञान की पुस्तकों के नीचे यूक्लिड व अर्कमीदिस की पुस्तकें छिपा कर रखता था । पच्चीस साल की अवस्था म वह पिसा म गणित विज्ञान का अध्यापक नियुक्त हुआ ।

गेलेलियो को यह पढ़ाया गया था कि भारी चीजें हलकी चीजों की अपेक्षा पृथ्वी पर जल्दी गिरती हैं । उसने अध्यापकों से पूछा—क्या कभी आपने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन प्रयोग द्वारा किया है ? उन्होंने उत्तर

दिया—यह अनावश्यक है। अरस्तू का लिखना ही काफी है। पर इससे गेलेलियो को संतोष न हुआ। उसने इस सिद्धांत की प्रयोग द्वारा परीक्षा करनी चाही और अपना यह विचार अपने मित्रों के सामने प्रकट किया। उन्होंने गेलेलियो को इस काम से रोकना चाहा पर वे उसे अपने निश्चय से विचलित न कर सके।

पिसा में एक बहुत ऊँचा स्तंभ है जो एक ओर को कुछ झुका हुआ है। इस स्तंभ की नींव कुछ कमजोर थी जिससे यह एक ओर को झुक गया। स्तंभ गिरा नहीं और इसी अवस्था में बना रहा। गेलेलियो ने लोहे की बनी दो गेंद लीं। इनमें से एक का वजन १०० पाउंड व दूसरे का एक पाउंड था। इन्हें एक सदूक में लेकर वह पिसा के स्तंभ पर चढ़ा और ऊपर पहुंच कर सदूक को उलट दिया। वे दोनों एक ही साथ जमीन पर आ गिरीं। नीचे बहुत से लोग इस प्रयोग को देखने के लिये एकत्र हुए थे। उनके आश्चर्य का पारावार न रहा। क्या अरस्तू ने गलत लिखा है? उन्हें अपनी आँखों पर विश्वास न हुआ।

गेलेलियो जब विद्यार्थी था तब वह एक इतवार को प्रार्थना के लिये पिसा के गिरजा घर में गया। वहाँ पर उसने देखा कि एक बड़ा भारी दीपक छत से लटकती हुई रस्सी से बंधा हुआ झूल रहा है। वह काफी अरसे तक दीपक के आवर्तन (swinging) को ध्यान पूर्वक देखता रहा और उसने मालूम किया कि आवर्तन

धीरे धीरे कम होता जा रहा है। यद्यपि आयर्तन घटता जा रहा था पर आवर्तन का समय वही बना रहा। इस बात की जाँच करने के लिये उसने नाड़ी की गति का आश्रय लिया। उसके पास कोई घड़ी न थी। नाड़ी की चाल से उसने मालूम किया कि आवर्तन के समय में कुछ फरक नहीं पड़ता। इस तरह से गेलेलियो ने दोलक (Pendulum) का सिद्धान्त खोज निकाला जो आगे चलकर घड़िया के आविष्कार का कारण बना।

पाश्चात्य विद्वान् टॉल्मी का कहना है कि पृथ्वी के चारों ओर सूर्य, तारे और मंगल, बुध, बृहस्पति आदि ग्रह चक्कर लगाते हैं। हिंदू धर्मशास्त्रों में इसी मत का उल्लेख मिलता है। टॉल्मी की मृत्यु के बाद लगभग डेढ़ हजार वर्ष बाद तक लोग यह मानते रहे कि पृथ्वी एक स्थिर ग्रह है। एरिस्टारकस ने जो आर्कमीदिस (२८७-२१२ ई० पू०) का समकालीन था यह लिखा है कि सौरमंडल का केंद्र पृथ्वी न होकर सूर्य है। पता नहीं यह होते हुए भी टॉल्मी ने पृथ्वी को केन्द्र क्यों माना। भारतीय ज्योतिर्विज्ञान वेत्ता आर्यभट का कहना है कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है। बाद को ज्योतिर्विज्ञान के विद्वानों ने यह मालूम किया कि टॉल्मी के सिद्धान्त में कुछ न कुछ गलती अवश्य है। केसाइल नरेश आल्फंजो ने सन् १४८८ में ज्योतिष् की नई सारिणी तैयार करवाई। यह टॉल्मी के उलझे हुए सिद्धान्तों से इतना क्षुब्ध हुआ कि उसने इस बात पर

खेद प्रकाश किया कि विश्व की उत्पत्ति के समय उस की सम्मति नहीं ली गई। कोपरनिकस ने अपनी पुस्तक De Revolutionibus Orbium Colestium मे यह लिखा है कि सूर्य के चारो ओर पृथ्वी व अन्य ग्रह घूमते हैं। पर यह पुस्तक सन् १५४३ में प्रकाशित हुई जब कोपर निकस मृत्यु शय्या पर था। कहा जाता है कि सत्तरह साल तक उसने इस पुस्तक का प्रकाशन रोक रखा। एक बुद्धिमान आदमी की तरह उसने अपनी यह पुस्तक पोप को समर्पित की। चूंकि इस पुस्तक को कोपरनिकस मरने से पहले केवल हाथ में ही ले सका था इसलिए वह यह मालूम न कर सका कि उस में एक भूमिका जोड़ दी गई है जिसमें पाठकों को सावधान किया गया है कि पुस्तक में जो कुछ लिखा गया है वह कपोलकल्पित है। कोपरनिकस का प्रिय शिष्य ब्रूनो था। वह चाहता था कि कोपरनिकस के सिद्धांतों का खूब प्रचार हो जिससे उसके गुरुदेव की आत्मा को शांति मिले। इस लिए उसने सब से यह कहा कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है और टॉल्मी ने जो कुछ लिखा है वह गलत है। इस से लोग नाराज हो उठे। रोम से वेनिस को यह समाचार भेजा गया कि ब्रूनो पोप के सुपुर्द कर दिया जाय जिससे उस पर मुकद्दमा चलाया जा सके। उस वक्त वेनिस रोम से बिलकुल स्वतन्त्र था फिर भी उसके शासकों ने उसे रोम भेज दिया यह वेनिस के लिए एक लज्जा की बात है। ब्रूनो पर

निराश एवं क्षुब्ध होकर गेलेलियो अपने घर लौट आया और उसने वहाँ एक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक में उसने कोपरनिकस के सिद्धान्तों का पूर्णतः प्रतिपादन किया और अकाट्य तर्कों द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है। धर्माचार्यों ने यह निश्चय किया कि पुस्तक का प्रचार एक दम रोक दिया जाय। वृद्ध गेलेलियो को रोम में बुलाकर कैद कर लिया गया। यह तय किया गया कि गेलेलियो को अपने कृत्य पर पश्चात्ताप करने को विवश किया जाय। यदि आवश्यकता हो तो शारीरिक कष्ट भी दिये जायँ। गेलेलियो यह सब जानता था। तीन दिन तक उसे कोठरी में बंद रखागया। इन तीन दिनों में उसे क्या क्या कष्ट दिये गये इस बात का कोई विवरण नहीं मिलता। अंत में गेलेलियो क्षमा मागने पर विवश हुआ। उसने कहा—मैं आपके हाथ में हूँ। मैं वही कहूँगा जो आप चाहेंगे। उसे धर्म के ठेकेदारों के सामने घुटने टेक क्षमा मागनी पड़ी और और सौगंध खानी पड़ी कि वह आगे कभी ऐसी बात न करेगा। जब वह उठा तो उसने एक धर्माचार्य के मंत्री को जिसे वह अपना मित्र समझता था, कान में कहा—यह सब कुछ होते हुए भी पृथ्वी घूमती है।

न्यूटन—सर आइजक न्यूटन का जन्म सन् १६४२ में वूल्सथोर्प गाव में हुआ। उसके पिता की मृत्यु उसके जन्म से पहले ही हो चुकी थी। १९ वर्ष की आयु में न्यूटन ने कैंम्रिज के ट्रिनिटी कालेज म प्रवेश किया।

सर आइजक न्यूटन

अर्वमीदिम

गेलिलियो

उस वक्त उसका गणित का ज्ञान नहीं के बराबर था। उसने यूक्लिड की पुस्तक खरीदी। उसके पढ़ने से उसे मालूम हुआ कि लेखक उन वस्तुओं को जो स्वयं सिद्ध हैं, सिद्ध करने का प्रयत्न कर रहा है। इसलिये उसने इस तरफ ध्यान नहीं दिया। फल यह हुआ कि जब उसने एक वजीफे को प्राप्त करने के लिये परीक्षा दी तो परीक्षकों ने उसके ज्यामिति के ज्ञान की कमी के बारे में अपना रिमार्क दिया। न्यूटन के लिये यह बहुत था। इसके एक साल बाद ही उसने द्विपद सिद्धांत (Binomial Theorem) की खोज की।

न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण का सिद्धात खोज निकाला। इसके अनुसार पदार्थ का हरेक कण प्रत्येक दूसरे कण को अपनी ओर आकर्षित करता है। यह आकर्षण शक्ति दोनों के वजन और एक दूसरे के बीच की दूरी पर निर्भर होती है। दूरी जितनी ज्यादा होगी आकर्षण शक्ति उतनी ही कम हो जायगी। यदि दूरी दुगुनी हो जाती है तो आकर्षण शक्ति चौथाई ही रह जाती है। न्यूटन और सेब का किस्सा भी बहुत से पाठकों ने पढा होगा। न्यूटन बाग में बैठा हुआ कुछ सोच रहा था कि इतने में सामने के पेड़ से सेब पृथ्वी पर आ गिरा। न्यूटन ने यह देख कर सोचा कि यह सेब नीचे कैसे गिरा। ऊपर क्यों नहीं चला गया? उसने यह मालूम किया कि सेब को पृथ्वी अपनी ओर आकर्षित करती है। इसलिये यह जमीन पर गिरता है। हम सब दैनिक

जीवन में होने वाली ऐसी घटनाएँ रोज देखते हैं पर ये क्यों होती हैं इस बारे में कुछ विचार नहीं करते।

गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण ही चंद्रमा उड़ कर अन्यत्र नहीं चला जाता। यह पृथ्वी की तरफ आकर्षित होता है पर कई शताब्दियों तक चंद्रमा पृथ्वी की ओर गिरता हुआ भी उससे टक्कर नहीं खाता। यह पृथ्वी की तरफ इतना ही गिरता है जिससे इसका भ्रमण-पथ मुड़ा हुआ रहे।

न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण सिद्धांत के अतिरिक्त तीन गति नियम खोज निकाले। पहला गति नियम जड़त्व (Inertia) से संबंध रखता है। इसके अनुसार वस्तुएँ जिस अवस्था में होती हैं उसी अवस्था में रहना चाहती हैं। यदि वे गतिवान होती हैं तो अपने आप कभी नहीं रुकतीं। यदि उनमें गति नहीं होती तो वे अपने आप चलती भी नहीं। उनको रोकने या चलाने के लिये शक्ति की आवश्यकता होती है।

न्यूटन के दूसरे गति-नियम के अनुसार जितनी शक्ति लगाई जाती है किसी पदार्थ में उतनी ही गति पैदा की जा सकती है। जिस तरफ शक्ति लगाई जाती है उसी तरफ वह पदार्थ चलने लगता है,

न्यूटन का तीसरा गति-नियम यह बतलाता है कि क्रिया और प्रतिक्रिया बराबर और समविरोधी होती हैं। यदि आप किसी चीज को मेज पर रखते हैं तो उस चीज का जितना बल मेज पर पड़ेगा उतना ही बल मेज उस

चीज पर डालेगी। यदि ऐसा न हो तो वह चीज मेज में से होकर नीचे आ गिरेगी।

न्यूटन ने प्रकाश विज्ञान में भी कई सारी खोज की। उसने परावर्तन दूरबीन (Reflecting Telescope) का आविष्कार किया। उसने प्रयोगों से यह मालूम किया कि सफेद प्रकाश सात रंगों की रश्मियों का मिश्रण है।

न्यूटन जन्म भर अविवाहित रहा। उसका आचरण अनुकरणीय था। उसका चरित्र का आदर्श उच्च था। बिशप बर्नेट का कहना है कि वह सबसे महान आत्मा थी जिसे वह जानता था। वह न्याय प्रिय, ईमानदार और खरा आदमी था। उसकी समाधि पर महाकवि पोप की निम्न लिखित पंक्तियाँ खुदी हुई हैं—

Nature and Natures laws lay hid in night
God said Let Newton be ', and all was Light

[प्रकृति और प्रकृति के नियम रात्रि के अंधकार में छिपे पड़े थे। ईश्वर ने कहा—न्यूटन हो और सब कहीं प्रकाश था।]

विज्ञान के आराधकों में गेलेलियो और सर आईजक न्यूटन का प्रमुख स्थान है। सर आईजक न्यूटन ने जिन नियमों की खोज की उन्हीं पर सारे भौतिक विज्ञान की भित्ति स्थापित है। गेलेलियो ने धर्माचार्यों के कोप का भाजन बनना पसंद किया पर विज्ञान की आराधना न छोड़ी। विज्ञान को ऐसे ही साधकों की आवश्यकता है।

भारतवर्ष में पंच तत्व सिद्धांत और यूरोप में चार तत्व

सिद्धात का जोरों से प्रचलन था। इस सिद्धात के अनुयाइयों का कहना था कि इस विश्व की उत्पत्ति पाच तत्वों से हुई। ये पाच तत्व पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश हैं। यूरोप वाले चार तत्वों से ससार का निर्माण मानते थे। वे चार तत्व मिट्टी, जल, वायु और अग्नि हैं। सर रॉबर्ट बोयल ने जो आधुनिक रसायन विज्ञान के जन्मदाता हैं, इस सिद्धात का पूरी तरह से खडन किया। बाद की खोजों से यह सिद्ध होगया कि इन पाचो में एक भी तत्व नहीं है। आजकल तत्वों की संख्या ९२ हैं। इनमे ९१ तत्व मालूम भी कर लिये गये हैं।

विज्ञान के आराधकों में अर्कमीदिस, सर माईकेल फेरेडे, विलियम हार्वी, लेवोजियर, हंफ्रे डेवी, मेंडेलिफ, सर विलियम रेम्जे, सर विलियम हर्स्चेल हेनरी मोइसन, मादाम क्यूरी, एडिसन, रदर फोर्ड, सर जे जे टॉमसन, आर्यस्टीन, सर जेम्स जीन्स, सर आर्थर एडिंगटन, सर प्रफुल्ल चंद्र राय, सी० वेंकट रमन, नील रत्नधर, डा० जगदीशचंद्र बोस, बीरबल साहनी और शातिस्वरूप भटनागर के नाम उल्लेखनीय हैं।

संक्षेप में विज्ञान का उद्देश्य अज्ञान को दूर कर सत्य की खोज करना है। लोगों का अंध विश्वास कितना जबर्दस्त था इसका कुछ अदाज पाठकों को ऊपर के पृष्ठों को पढने से मालूम होगया होगा। इस अंध विश्वास को दूर करने में विज्ञान के साधकों को कितना प्रयत्न करना पड़ा और कितने कष्ट उठाने पड़े यह एक भुक्तभोगी ही अच्छी तरह जान सकता है। ब्रूनो के बलिदान का फल

क्या हुआ यह सब अच्छी तरह जानते हैं। आखिर सत्य की विजय हुई। आज ससार का बच्चा बच्चा भी इस बात को अच्छी तरह जानता है कि पृथ्वी सूर्य क चारों ओर घूमती है।

सौर मंडल का निर्माण

सौर मडल के सदस्या में सूर्य के अतिरिक्त बुध, शुक्र पृथ्वी, मगल, बहस्पति, शनिश्चर, अरुण और वरुण हैं। चंद्रमा पृथ्वी का एक उपग्रह है।

श्रीपियरे साइमन मार्कीस 'द' लाप्लेस के नीहारिका वाद के अनुसार सारा विश्व एक बडी भारी चक्कर खाती हुई नीहारिका के रूप में था। नीहारिका का सारा पदार्थ गैसीय रूप में था। इसका व्यास वरुण ग्रह के व्यास से कुछ अधिक था। आजकल सूर्य अपनी धुरी पर २७ दिनों में एक बार घूमता है। वरुण ग्रह से कुछ अधिक व्यास का सूर्य यदि अपनी धुरी पर २७ दिनों में एक बार चक्कर काटे तो उसकी बाहरी परत अलग होकर खाली स्थान में समा जायेगी। वरुण ग्रह सूर्य के चारों ओर १६५ वर्षों में परिक्रमा पूरी करता है। इसका भ्रमण पथ प्रत्यक्षत वृत्ताकार है और इस तरह से

सूर्य से हमेशा उतनी ही दूरी पर रहता हैं। इससे यह परिणाम निकलता है कि यदि वह नीहारिका अपनी धुरी पर १६५ वर्षों में एक बार से अधिक वेग से घूमती तो उस की बाहरी परत अलग जा गिरती। पहले नीहारिका का का भ्रमण वेग बहुत ही कम था। धीरे धीरे वह वरुणगृह के भ्रमण वेग के बराबर होगया। इससे एक कुंडली अलग हुई जिससे वरुण ग्रह बना। बाकी बची हुई नीहारिका सिकुड़ती गई और उसका भ्रमण वेग बढता गया। जब यह वेग अरुण ग्रह के वेग के बराबर होगया तो उसस दूसरी कुंडली निकली जिसमे अरु ग्रहण की उत्पत्ति हुई। इस तरह से नीहारिका सिकुड़ती गई और उससे अन्य ग्रहों की उत्पत्ति हुई। अभाग्यवश सूर्य का आजकल का वेग इतना कम है कि यह कभी सोचा ही नहीं जा सकता कि कभी सूर्य से इस तरह से अन्य ग्रहों की उत्पत्ति हुई होगी। लाप्लेस के सिद्धान्त के अनुसार सूर्य का वेग २७० मील प्रति सेकेण्ड होना चाहिये पर वास्तव में इसका वेग $1\frac{1}{5}$ मील प्रति सेकेण्ड है। पृथ्वी की आयु आजकल लगभग दो अरब साल समझी जाती हैं। ज्योतिर्विज्ञान हमें यह बतलाता है। कि दो अरब साल पहले सूर्य का विस्तार एवं अवस्था कैसी थी। इसे ध्यान में रखते हुए यह असभव मालूम होता है कि सूर्य पृथ्वी के पथ जितना फैला हो जैसा कि नीहारिका वाद हमे बतलाता है। इस तरह से नीहारिका वाद का अंत होगया।

डा० चेंबरलेन और डा० मौल्टन ने सन् १९१६ में

यह अनुमान किया कि सूर्य के आसपास एक और तारे का आगमन हुआ। यह तारा बहुत अधिक घना और निष्क्रिय था। इससे सूर्य के आकर्षण का इस पर कोई प्रभाव न पड सका। ज्यों ज्यों यह तारा सूर्य के नजदीक आता गया उसका आकर्षण बढ़ता गया। इस आकर्षण ने सूर्य की भीतरी गुरुत्वाकर्षण शक्ति को कम कर दिया। परिणाम स्वरूप ज्वार शक्ति के तनाव के कारण सूर्य के दोनों ओर उभार निकल आये। जब यह तारा सूर्य से कुछ दूरी पर था तो उसके कमजोर आकर्षण के कारण कुछ छोटे टुकड़े सूर्य से अलग होकर फिर वापिस सूर्य में मिल गये। इससे सूर्य की गति कुछ कम होगई। तारे के नजदीक आ जाने पर उसके आकर्षण के कारण अलग हुए टुकड़े फिर सूर्य तक न पहुंच सके और उन्होंने सूर्य के चारों ओर वृत्ताकार पथ ग्रहण किया। जब यह तारा सूर्य की मध्यरेखा की तरफ आया तो सूर्य के पास और दूर के किनारे की ओर से एक साथ पिंड निक्षेप हुआ। पहली बार के निक्षेप से वरुण और अरुण ग्रहों की उत्पत्ति हुई। दूसरे से शनि और वृहस्पति, फिर उपगृहों, उसके बाद मंगल और पृथ्वी, शुक्र और बुध गृहों की उत्पत्ति हुई। इसके पश्चात् सूक्ष्म गृह बने। इस तरह से विश्व की उत्पत्ति हुई।

श्री० हेरॉल्ड जेफ्रीज एवं सर जेम्स जीन्स ने इस सूक्ष्म गृह वाद में कुछ परिवर्तन किया है। उनके अनुसार इस तारे का आकार बहुत ही बड़ा था। इसमें दो उभार

का आनन्द उठाया करता है। बुध की सतह रंगविहीन है। ज्वार-भाटे के लिए बुध सूर्य से ही प्रभावित होता है।

शुक्र— घनत्व, वजन और आकार को देखते हुए शुक्र पृथ्वी से दूसरे ग्रहों की अपेक्षा अधिक मिलता जुलता है। शुक्र में वायुमण्डल मौजूद है। यह पृथ्वी से दो करोड़ साठ लाख मील दूर है। शुक्र सब से अधिक जाज्वल्यमान ग्रह है। इसमें सूर्य से प्राप्त प्रकाश को परावर्तित करने की शक्ति बहुत ही अधिक है। सूर्य एव चन्द्रमा के पश्चात् शुक्र ही सबसे अधिक चमकनेवाला ग्रह है।

शुक्र का व्यास लगभग ७,७०० मील है। इसका घनत्व पृथ्वी के घनत्व का ०.९ है और वजन पृथ्वी के वजन का ०.८१ है। यह २२५ दिनों में सूर्य की परिक्रमा करता है और अपनी धुरी पर लगभग ६८ दिनों में एक चक्कर काटता है। बुध के समान यह कभी तो शाम को और कभी सुबह निकलता है।

चन्द्रमा—ग्रहों में चन्द्रमा हमारा निकटतम पड़ोसी है। यह पृथ्वी का उपग्रह है। चन्द्रमा पृथ्वी एवं दूसरे ग्रहों की तरह एक तमसाच्छन्न उपग्रह है। इसकी जगमगाहट पूर्णत सूर्य के प्रकाश पर निर्भर है। चन्द्रमा की मनोहर एवं शीतल ज्योत्सना ने बहुत से कवियों का हृदय अपनी तरफ बरबस आकर्षित कर लिया है। शायद ही कोई कवि ऐसा हुआ हो जो चन्द्रमा की निखरी हुई चाँदनी से प्रभावित न हुआ हो।

यह एक ठंडा, जलविहीन, बंजर चट्टानों का प्रदेश

है जहाँ पर न तो बादल हैं और न समुद्र, सरिताएँ ताल झील व पेड़ पौधे ही हैं। चन्द्रमा में एक दिन ३५४ घंटों का होता है और इतनी ही बडी लगभग रात होती है। चन्द्रमा पृथ्वी से २,३९००० मील दूर है। चन्द्रमा का वजन पृथ्वी के वजन का १/८१५ है और उसका घनत्व पृथ्वी के घनत्व का ०.६०१ है। पृथ्वी की सतह पर जिस चीज का वजन ६ सेर है वही वस्तु चन्द्रमा में एक सेर होगी। जो मनुष्य यहां ५ फीट ऊँचा कूद सकता है वह चाँद में पहुँचने पर ३० फीट ऊँचा कूद सकेगा। चन्द्रमा का व्यास २,१६० मील है। पृथ्वी का व्यास चन्द्रमा के व्यास से लगभग चौगुना अधिक है। यदि पृथ्वी के ५० बराबर टुकड़े कर दिये जायँ और हरेक को गोलाकार रूप दे दिया जाय तो प्रत्येक टुकड़ा एक चन्द्रमा के बराबर होगा। चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर २७.३ दिनों में पूरा चक्कर काट लेता है।

चन्द्रमा का हमेशा एक ओर का ही भाग पृथ्वी की तरफ रहता है। जितना समय यह पृथ्वी के चारों ओर घूमने में लेता है उतने ही काल में यह अपनी धुरी पर एक चक्कर काट लेता है। पृथ्वी के चारों ओर तो यह एक ही गति से चक्कर काटता है पर उसका अपने ग्रह पथ पर घूमने का वेग एक सा नहीं रहता। फलतः यह ऐसा दिखाई देने लगता है मानो हमारी ओर चाँद बहुत धीरे से अपना सिर हिलाता हो। इस तरह

दूसरे अर्धवृत्त का थोडा सा इधर उधर का भाग दिखाई दे जाता है ।

ज्वार भाटा चन्द्रमा की आकर्षण शक्ति के कारण होता है । पृथ्वी के एक तरफ का भाग दूसरी तरफ के भाग की अपेक्षा ८००० मील निकट है । चद्रमा के पास वाला भाग सतह से कुछ ऊपर उभर आता है । इससे ज्वार की उत्पत्ति होती है ।

चद्रमा की कलाएँ घटती बढती रहती हैं । सबसे पहले हम चद्रमा को सूर्यास्त के बाद पश्चिम दिशा की ओर आकाश में देखते हैं । इस समय यह अर्ध चद्र या दूज का चाँद कहलाता है । हिंदू धर्मशास्त्रों में इस के दर्शन का बडा महत्व माना गया है । यदि निस्तब्ध रात्रि का समय हो तो चाँद का शेष भाग भी धुधला सा दिखाई देगा । यह शेषाश पृथ्वी द्वारा परिक्षिप्त प्रकाश के कारण दिखलाई पड़ता है । प्रति रात्रि का वह धीरे धीरे पूर्व की तरफ बढ़ता जाता है यहाँ तक कि पूर्णिमा को यह पूरा वृत्ताकार रूप धारण कर लेता है । यह अब पूर्ण चद्र कहलाता है । यह ठीक सूर्यास्त के समय उदय होता है । यह कार्य पंद्रह दिनों में होता है । इस पखवाडे को शुक्ल पक्ष कहते हैं । फिर यह वृत्ताकार पूर्ण चद्र क्षीण होने लगता है यहाँ तक कि वृत्त का चौथाई भाग रह जाता है । यह वह चद्रमा है जो प्रातःकाल आकाश में बहुत ऊँचा दिखाई पड़ता है । ज्यों ज्यों दिन बीतते

जाते हैं यह फिर अर्धचन्द्राकार रूप धारण कर लेता है। यह आकार भी ज्यों ज्यों यह सूर्य के निकट पहुचता है क्षीण होता जाता है। अंत में सूर्य के अजस्र प्रकाश में चंद्रमा अदृश्य हो जाता है। इसके बाद फिर यह नये चाँद के रूप में दिखाई पड़ता है। यह कार्य भी पन्द्रह ही दिनों में पूरा होता है। फलत यह पखवाड़ा कृष्णपक्ष कहलाता है। इस तरह यह चक्र चलता रहता है।

चन्द्रमा में वायुमडल का अभाव है। इसके अतिरिक्त यह स्थान पानी से भी शून्य है। इसलिये चद्रमा में जीवन का होना असभव है। चद्रमा में पर्वत, सागर, एवं ज्वालामुखी पर्वतों के मुहाने पाये जाते हैं। सागर नाम भ्रामक हैं क्योंकि उनमें से किसी में पानी नहीं है। चंद्रमा का कलंक सभवत किसी ज्वालामुखी पर्वत का मुहाना मात्र होगा।

मगल—चद्रमा के बाद मंगल ही हमारा निकट पड़ोसी ठहरता है। यह ग्रह चंद्रमा से बड़ा है। मंगल को पृथ्वी का पुत्र मानते हैं क्योंकि उसमें और पथ्वी म बहुत कुछ समानता है। ज्योतिषी लोग इसे बड़ा वक्र ग्रह समझते हैं। यह एक रक्तवर्ण ग्रह है। कभी कभी यह सूर्य के इतना नजदीक चला जाता है कि दिखलाई नहीं पड़ता। यह अपना स्थान परिवर्तन करता रहता है। मंगल को सूर्य के चारों ओर घूमने में ६८७ दिन लगते हैं। यह सूर्य से १४ करोड़ १५ लाख मील दूर है। यह पृथ्वी के

सूर्य के दोनों ओर निकल आए। जब यह तारा सूर्य के बिलकुल नजदीक चला आया तो दोनों के आपस के आकर्षण का अन्तर इतना अधिक होगया कि सूर्य का कुछ भाग दूर जा पड़ा। बाद में ठंडे होने पर उससे ग्रहों एवं उपग्रहों की उत्पत्ति हुई। डॉ० चेंबरलेन के सिद्धांत के अनुसार छोटे या बड़े गृह एकदम द्रव रूप में परिणत हो कर बड़ी जल्दी ठोस आकार के हो गये और वे गृह जो ठोस कणों के मिलने से बने, प्रारंभ से ही ठोस आकार के थे। श्री० जेफ्रीज का कहना है कि चाहे जिस तरह से ग्रहों का पदार्थ ठंडा हुआ हो वे पहले द्रव रूप में अवश्य रह चुके हैं। डा० चेंबरलेन के अनुसार दो सर्पाकार पिंडों का निक्षेप हुआ। सर जेम्स जीन्स का कथन है कि एक ही पिंड का निक्षेप हुआ था। इस तरह से इस विश्व की उत्पत्ति हुई।

सूर्य—सौर-मंडल में सब से महत्व पूर्ण ज्योतिपिंड सूर्य है। सूर्य से ही हमें ताप और प्रकाश मिलता है। यदि सूर्य न हो तो पृथ्वी पर कोई जीवधारी नहीं रह सके, सारे समुद्र नीचे से लेकर ऊपर तक बर्फ मय हो जायँ। यहाँ तक कि हवा भी ठोस आकार मे परिणत हो जाय।

सूर्य एक तारा है। इसका इतना अधिक महत्व इसलिये है कि यह पृथ्वी के निकट है। बाकी जितने तारे हैं वे सूर्य की अपेक्षा पृथ्वी से बहुत ही अधिक दूर हैं। सूर्य की सतह बहुत ही गर्म और

बुध कभी तो पश्चिम की ओर दिखाई देता है और कभी पूर्व की तरफ। यह अधिकतर अर्द्धचन्द्राकार रूप में दिखाई देता है। इसकी कलाएँ भी चन्द्रमा की कलाओं के सदृश हैं।

बुध ८८ दिनों में सूर्य की परिक्रमा पूरी करता है। यह अपनी धुरी पर भी इतने ही दिनों में एक बार घूमता है। यह सूर्य के लगभग ३६,०००,००० मील और पृथ्वी से ९३,०००,००० मील दूर है। बुध का प्रत्यक्ष व्यास ५ से लेकर १३ इंच तक है और वास्तविक व्यास ३,००० मील है। इसका आयतन पृथ्वी के आयतन का १८वां भाग है। श्रीयुत बकलैंड के कथनानुसार इसका वजन पृथ्वी के वजन का लगभग ७ ५ है। पृथ्वी के घनत्व से मिलान करने पर इसका घनत्व ०.८५ व जल के घनत्व से मिलान करने पर ३८ है।

पृथ्वी को सूर्य का जितना प्रकाश मिलता है उसका सात गुना बुध को मिलता है। बुध का जो भाग सूर्य की तरफ पड़ता है उसका तापक्रम ३५० शतांशग्रेड है। यह मई के महीने में पृथ्वी के निकट और नवम्बर में सूर्य के नजदीक रहता है। बुध में गर्मी व जाड़े के मध्यभाग में केवल ४४ दिनों का अन्तर होता है। जैसा कि ऊपर कहा गया है बुध जितने समय में सूर्य के चारों तरफ घूमता है उतने ही समय में वह अपनी धुरी पर भी चक्कर काटता है। फलतः हमेशा बुध का एक ही पार्श्व सूर्य की ओर रहता है। एक पौधिक साल में बुध का आधे से कुछ अधिक भाग सूर्य के प्रकाश

३ करोड ५५ लाख मील तक निकट आ जाता है । इस की पृथ्वी से औसत दूरी ४ करोड ८६ लाख मील है । इसका व्यास ४,२०० मील है । इसका वजन पृथ्वी के वजन के १२५ से कुछ कम है । मंगल का घनत्व पृथ्वी के घनत्व से मिलान करने पर ० ७३ होता है । मंगल अपनी धुरी पर पृथ्वी की तरह ही घूमता है । इसीलिये इसे पृथ्वीसुत कहा गया है । यह अपनी धुरी पर २४ घंटे ३७ मिनिट एवं २२॥। सेकेण्ड मे चक्कर काटता है। इसकी आकृति घंटे घंटे में बदलती रहती है । पश्चिमी भाग दृष्टि से ओझल हो जाता है और पूर्वी भाग उठता हुआ दिखाई पड़ता है । बारह घंटों में इसका आकार बिलकुल बदल जाता है । मंगल के ध्रुवों पर एक-एक सफेद धब्बा दिखाई पड़ता है । ये धब्बे मंगल के शरत्काल के ३ से ६ महीने बाद सब से बड़े हो जाते हैं । बाद में छोटे होने लगते हैं और अंत में ग्रीष्म काल के ३ से ६ महीने पश्चात् सब से छोटे रह जाते हैं । पृथ्वी के ध्रुवों पर बर्फ जमी हुई है । अत यह माना गया है कि मंगल के ध्रुवा पर ये सफेद धब्बे जमी हुई बर्फ का संकेत करते हैं ।

मंगल का वर्ष ६८७ दिन का होता है । सर्दी, गर्मी आदि ऋतुएँ पृथ्वी की ऋतुओं की अपेक्षा अधिक देर तक रहती हैं । मंगल के उत्तरी अर्धवृत्त में ग्रीष्म ऋतु ३८१ दिन से कम नहीं रहती । जाड़े का मौसम ३०६ दिन तक रहता है। जाड़े में ध्रुवों पर हिमावरण बहुत बढ जाता है और गर्मी में बहुत ही कम रह जाता है । मंगल का

दक्षिणी ध्रुव, वर्ष में एक बार अवश्य हिमावरण से निवृत्त हो जाता है क्योंकि यह आवरण समकेंद्रिय नहीं है। शियापरेली ने मंगल के चमकीले भाग पर कई लंबी व सकरी रेखाएँ मालूम कीं। ये नहरें कहलातीं हैं इन नहरों ने एक जाल-सा बिछा दिया है। ये सागरों को आपस में मिलाती हैं।

मंगल के इन विभिन्न स्थानों का रंग परिवर्तन बहुधा देखा गया है। इन में से कई इन पर पृथ्वी के वायुमंडल के प्रभाव के कारण हैं। मंगल का वायुमंडल अधिकतर बहुत ही स्वच्छ एवं पारदर्शक है। मंगल में वास्तविक प्रकाश का सर्वथा अभाव है। यह केवल सूर्य के प्रतिबिंबित प्रकाश से ही चमकता है। मंगल में बहुत थोड़े बादल हैं।

मंगल की आकर्षण शक्ति पृथ्वी की आकर्षण शक्ति से कम है। जो वस्तु यहाँ दो सेर वजन में होगी वह मंगल में एक सेर से भी कम होगी। जो आदमी यहाँ ७१ सेर भार उठा सकता है वह मंगल में पहुँचने पर ४६ सेर वजन उठा सकेगा। जिस मनुष्य का वजन यहाँ पर ५० सेर होगा वह मंगल में १९ सेर ही होगा। मंगल के दो उपग्रह हैं।

बृहस्पति— बृहस्पति सबसे भारी और बड़ा ग्रह है। यह आसानी से दिखाई देता है। यह बहुत ही चमकीला ग्रह है। इसका व्यास ८८,३४० मील है। यह पृथ्वी से लगभग १४०० गुना भारी है और इसका घनत्व पृथ्वी के

घनत्व का एक चौथाई है। वृहस्पति का वजन पृथ्वी के वजन का केवल ३१६.९४ है। यह अपनी धुरी पर ९ घंटे और ५६ मिनट में चक्कर लगाता है और ११.८६ साल में सूर्य की परिक्रमा कर पाता है। वृहस्पति को देवगुरु भी कहते हैं। वृहस्पति में वायुमंडल मौजूद है और उसमें बादलों का अस्तित्व भी मालूम किया गया है। यह अर्ध रात्रि को अच्छी तरह दिखाई देता है। इस वक्त और कोई ग्रह इतना चमकीला नहीं होता। वृहस्पति के नौ उपग्रह हैं।

शनिश्चर— वृहस्पति के बाद शनिश्चर ही बड़ा ग्रह है। इसका व्यास ७५,००० मील है। चूंकि यह वृहस्पति की अपेक्षा सूर्य और पृथ्वी से बहुत अधिक दूर है। यह छोटा और धुंधला सा दिखाई देता है। इसके चारों ओर कुंडलियाँ हैं। ये शनिश्चर की मध्य रेखा पर हैं। ये कुंडलियाँ ठोस आकार की नहीं हैं। ये छोटे छोटे कणों मुख्यतः हिमकणों की बनी हुई हैं। तीन कुंडलियों में से बीच की कुंडली सबसे अधिक चमकीली है। शनिश्चर की धुरी कुछ झुकी हुई है जिससे कुंडलियों का कभी उत्तरी और कभी दक्षिणी भाग दिखाई देता है। इसकी मध्यरेखा का व्यास ७५,१०० मील है और ध्रुवों का व्यास ६७,२०० मील है। इसका घनत्व पृथ्वी के घनत्व का .१२५ है। शनिश्चर का वजन पृथ्वी के वजन का ९४.८० गुना है। यह अपनी धुरी पर १० घंटे और १४ मिनट में चक्कर काटता है। सूर्य की परिक्रमा करने में इसे २९.५

साल लगते हैं। कुंडलियों के कारण यह एक बहुत ही सुंदर ग्रह है।

अरुण—(Uranus) इस ग्रह को सन् १७८१ में सर विलियम हर्शेल ने खोज निकाला था। इसका व्यास ३२,०० ० मील है। यह पृथ्वी से लगभग ६६ गुना बड़ा है। पर इसका घनत्व पृथ्वी के घनत्व का केवल एक चौथाई है। इसका भार पृथ्वी के भार का १४ ६ गुना है। यह अपनी धुरी पर १० घंटे और ४२ मिनट में घूमता है। सूर्य की परिक्रमा करने में इसे ८४ साल लगते हैं। अरुण ग्रह की सतह का तापक्रम १७०, शताशग्रेड है। अरुण के चार उपग्रह हैं।

वरुण—(Neptune) यह ग्रह सन् १८४६ में मालूम किया गया था। इसका व्यास ३१,००० मील है। यह पृथ्वी से लगभग ६० गुना बड़ा है, इसका वजन पृथ्वी के भार का सतरह गुना है। वरुण ग्रह अपनी धुरी पर १५ घंटे और ४८ मिनट में चक्कर काटता है। यह १६४ ८ साल में सूर्य की परिक्रमा पूरी करता है। वरुण ग्रह सूर्य से २७,९९,०००, ००० मील दूर है।

प्लूटो—(Pluto) इसकी अभी हाल ही में–सन् १९३० में–खोज हुई है। इसको सूर्य के चारों ओर घूमने में २५० वर्ष लगते हैं। यह सूर्य से बहुत दूर है। इसलिये वहाँ संभवतः बहुत ही सर्दी पड़ती है। यह पृथ्वी से बहुत छोटा होना चाहिये। इसका वजन अभी

तक मालूम नहीं किया जा सका है ।

इन गृहों के अतिरिक्त गगन-मंडल में बहुत से तारे हैं । इनमें से हरेक तारा एक सूर्य के समान है और उसका सौर-परिवार की तरह अपना अलग मंडल है । पर ये तारे पृथ्वी से बहुत ही दूरी पर स्थित हैं । उनका प्रकाश यहाँ कई साल बाद पहुच पाता है । ध्रुव तारा पृथ्वी से लगभग ३२ नील मील दूर है । वहाँ से यहाँ तक प्रकाश आने में लगभग साठ साल लगते हैं । इन तारों में कुछ के नाम ये हैं—

मित्र, लुब्धक, प्रभाशक, कुंभ, श्रवण, अभिजित् पुनर्वसु, स्वाति, ब्रह्म हृदय, सप्तर्षि, (मरीचि अत्रि, अंगिरा पुलस्त्य, पुलह, क्रतु एव वशिष्ठ) नक्षत्र नेमि (ध्रुव नक्षत्र) मघा, रोहिणी, अश्विनी, पूर्व एवं उत्तर फल्गुनि, हस्त, विशाखा, अनुराधा, मूल, उत्तराषाढ़ा, पूर्वा भाद्रपदा, गोपद, उत्तर भाद्रपदा, आश्लेषा, धनिष्ठा, शतभिषा,, पूर्वाषाढा, भरणी, पुष्प, रेवती, आर्द्रा, चित्रा, कृत्तिका, ज्येष्ठा, अगस्त्य एवं आकाश गंगा ।

पृथ्वी का वर्णन

पृथ्वी भी सौर-मंडल का एक ग्रह है। पृथ्वी की उत्पत्ति के बाद उसका गैसीय पदार्थ द्रव रूप में परिणत होकर किस तरह ठोस आकार का बना, किस तरह महासागर, महाद्वीप, पर्वतमालाओं आदि का निर्माण हुआ; ये सब विचारणीय बातें हैं।

लार्ड केलविन के घनीकरण सिद्धांत के अनुसार चट्टानें ठंडी होने पर सिकुड़ती हैं। पहले पहल सतह की परत बनी। इसका घनत्व इसके नीचे के द्रव के घनत्व से अधिक था। यह परत अस्थिर थी और इसलिये टूट कर नीचे जा गिरी और पिघल गई। ऐसा कई बार हुआ। इससे भीतरी भाग का ताप इतना कम होगया कि ये ठोस टुकड़े इतनी जल्दी फिर पिघल न सके। नये बने हुए ठोस पदार्थ पर डूबने पर बहुत सा दबाव पड़ा जिससे उनका तापक्रम बढ़ गया और

ये ठोस पदार्थ फिर पिघल गये। सतह की परत के ये टुकड़े बहुत नीचे नहीं पहुच पाते क्योंकि भारी पदार्थ पहले ही गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण नीचे पहुच चुके हैं। परत की सतह से बहुत सारे ताप का विकिरण (Radiaton) होता है। इस से एक ऐसी अवस्था आजाती है कि जितना ताप भीतरी भाग से मिलता है उतना ही सतह पर से विकिरण होजाता है। इस तरह से पृथ्वी की सतह का निर्माण हुआ। पृथ्वी का भीतरी भाग ठोस है पर दबाव और तापक्रम की अधिकता होने से द्रव रूप में पाया जाता है।

पृथ्वी के उत्तरी अर्धवृत्त में जमीन की और दक्षिणी अर्धवृत्त में पानी की अधिकता है। उत्तरी अर्धवृत्त में ध्रुव पर महासागर है और दक्षिणी अर्धवृत्त में ध्रुव पर महाद्वीप स्थित है। पृथ्वी का औसत घनत्व ५.५ है। सतह पर की चट्टानों का घनत्व ३ से कुछ कम है। पृथ्वी के भीतरी भाग में पाये जाने वाले द्रव का जो मुख्यत निकल और लौह मय है, घनत्व १० या ११ है। पृथ्वी की यह परत ३-४ मील गहरी है। यह पृथ्वी के ८००० मील व्याम को देखते हुए बहुत पतली मालूम होती है। यदि पृथ्वी के घेरे को हम १ फुट व्यास का मानें तो महासागरों की गहराई ००५ इञ्च से कुछ कम होगी। सबसे अधिक गहराई ०१ इञ्च से अधिक न होगी। स्थल भाग समुद्र से ००१ इञ्च ऊँचा होगा। एवरेस्ट पहाड़ की ऊँचाई

०१ इञ्च से कुछ कम होगी। जल और स्थल के वर्तमान विभाजन को समझाने के लिए अलग सिद्धात बने हुए हैं पर उनमें आपस में इतना मतभेद है कि यह ठीक तरह से नहीं कहा जा सकता कि कौनसा सिद्धात मान्य है। संभव है कुछ समय बाद पृथ्वी के आकार को ठीक तरह से समझा सकने वाला ऐसा सिद्धात निकल आवे जो सत्य के निकट हो।

पृथ्वी की आयु के बारे में भी वैज्ञानिकों के अलग अलग मत हैं। प्रोफेसर होम्स के अनुसार पृथ्वी की आयु १ अरब ६० करोड साल और ३ अरब साल के बीच म है। दूसरे लोग इसे ५ अरब साल पुरानी मानते हैं। इस तरह से पृथ्वी की आयु १ अरब से अधिक और दस अरब साल से कम मानी जाती है। पृथ्वी का वजन ६,५८,००,००,००,००,००,०० ००,०० ००० टन है।

पृथ्वी की सतह निम्न लिखित तत्वों से बनी हुई है—

ओषजन	४७·२९	सैंधवियम(Sodium)	२·३६
सिलिकन	२७·२०	टाइटेनियम	०·३३
एल्यूमीनियम	७·८१	कार्बन	०·२२
लौह	५·४६	उदजन(Hydrozen)	०·२१
खटिकम (Calcium)	३·७७	फास्फरस	०·१०
मगनेसियम	२·६८	मैंगनीज्	०·०८
पांशुज (Potassium)	२·४०	गंधक	०·०३

बेरियम (Barium)	००३
प्लविन् (Fluorine)	००२
हरिन् (Chlorine)	००१
कुल	१०० ००

इन मे से कई स्वतंत्र रूप में और बाकी यौगिक रूप मे पाये जाते हैं। कार्बन, हीरे और ग्रेफाइट के रूप में मिलता है। पृथ्वी की सतह का तीन चौथाई भाग पानी और बाकी एक चौथाई जमीन है। आप देखेंगे कि पृथ्वी की सतह पर कहीं तो गहरे महासागर हैं, कहीं मैदान और कहीं ऊँचे पर्वत हैं। बहुत से ऊँचे पर्वत ज्वालामुखी के शंकु स्थान हैं। जब ज्वालामुखी का भयंकर उत्पात होता है तो उसमें से गर्म पिघला हुआ लावा जोर से बाहर निकलता है और आस पास फैल जाता है। जहाँ पर ज्वालामुखी के उत्पात बार बार होते हैं वहाँ पर इन फेंकी हुई लावा आदि वस्तुओं का बहुत ऊँचा ढेर-का-ढेर लग जाता है। जापान की पवित्र पर्वतमाला फ्यूजियामा इन दिनों एक बहुत ही मनोरम सुगठित शंकु के आकार की पर्वत-माला दिखाई देती है। इसकी चोटी पर हमेशा हिमावरण छाया रहता है। इसमें ज्वालामुखी का प्रकोप शांत होगया है। सरिताओं और हिम खंडों ने उसके ढाल पर घाटियाँ बना दी हैं। दूसरी तरह के पर्वत पृथ्वी के धरातल पर पड़ी हुई दरारों में से निकले हुए द्रवीभूत लावा के जमने से बनते हैं।

दक्षिण डकोटा की ब्लैक हिल्स पर्वत मालाएँ इसी तरह से बनी हैं। पहले यहाँ पर रज प्रस्तर (Sandstone) चूने के पत्थर एवं शेल की विस्तृत और मोटी सतहें थी। पिघला हुआ लावा पृथ्वी के अंतर्भाग से निकल कर उन प्रस्तर समूहों में जा मिला। जो प्रस्तर सब से ऊँचा था वह महराबदार होता हुआ ऊपर उठा और उसकी सतह आस पास की जगह से ३,००० फुट ऊँची होगई। इसके बाद वायु एवं जल के थपेड़ों ने उस बहुत कुछ काट छाँट कर सजा भी दिया।

लावा में पिघली हुई चट्टानें होती हैं। इनमें से बहुत सी रवे दार होती हैं। लावा का रंग और वजन अलग अलग स्थान पर अलग अलग होता है। जो लावा भारी होता है वह पानी से लगभग तिगुना घना होता है और उसका रंग साधारणतः गहरा भूरा या काला होता है। हलका लावा पानी से दुगना भारी होता है और उसका रंग कुछ पीलापन लिये हुए या सफेद होता है। लावा का तापक्रम २२०४ फार्नेहिट से कुछ अधिक होता है। ज्यों ही वह बाहर फेंक दिया जाता है इसकी सतह काली पड़जाती है और वह ठंडा होकर ठोस आकार का बन जाता है। लावा के अलावा ज्वालामुखी से पत्थरों के टुकड़े भी बाहर फेंके जाते हैं। उनका आकार अलग अलग होता है। वह कभी राख या धूल होती है तो कभी कभी बहुत बड़े पत्थर भी होते हैं जिनका वजन कई टन होता है।

पृथ्वी की सतह अधिक या कम सम दबाव (Isostasy) की अवस्था में है। जो पर्वत जितना ही अधिक ऊँचा होता है उसके प्रस्तर समूहों का आपेक्षिक घनत्व निम्न प्रदेशों के प्रस्तर समूहों के आपेक्षिक घनत्व से उतना ही कम होगा। समुद्र के भीतर का प्रस्तर समूह महाद्वीपों का निर्माण करने वाले प्रस्तर समूहों की अपेक्षा प्रति घन मील काफी भारी होता है।

जब पर्वत मालाएँ विनाशकारिणी शक्तियों की चपेटों में आजाती हैं तो उनका वह भाग वजन म कम हो जाता है। इन पर्वत मालाओं मे नदियों द्वारा हिमखंडों आदि का ले जाया गया भाग मैदानों में जमा होता है जिससे उनका भार बढ़ जाता है। पृथ्वी का बाहरी भाग काफी मजबूत होता है और यह बहुत सा दबाव सह सकता है। पर ऊर्ध्वस्थल इतने हलके और निम्नस्थल इतने भारी हो जाते हैं कि ऊपर नीचे चालन शुरु हो जाता है। हलका भाग ऊपर उठता है तथा भारी भाग और भी नीचे बैठता है।

पर्वतों पर नीचे से ऊपर की ही ओर दबाव नहीं पड़ता बल्कि बगल की तरफ से भी दबाव पड़ता है जिससे वे टेढ़े मेढ़े हो जाते है। यह एक तरफ का जोर प्रस्तर समूहों को इतना दबा देता है कि वे कुचल से जाते हैं। फलस्वरूप वे मुड़ते, फटते और एक दूसरे पर जा पड़ते हैं। दबाव से छुटकारा पाने के लिये वे हर तरह का प्रयत्न करते हैं।

पर के भाग पर निरंतर तनाव पड़ने के कारण व फट जाते हैं और कभी कभी उनके अलग टुकड़े भी हो जाते हैं। इस तरह से चट्टानें टूट टूट कर रजकणों में परिवर्तित हो जाती हैं।

(२) सपृक्ता करण और शोषण (Saturation and Desiccation) वर्षा के समय चट्टानें पानी को सोखती हैं और बाद में सूर्य के ताप से उनका शोषण होता है। इस से पत्थर के कण ढीले पड़ जाते हैं और उनका चूरा बन कर अलग हो जाता है।

(३) तुषार—वर्षा का जल जमीन में और प्रस्तर समूहों के दरारों में भर जाता है। जब वायुमंडल का तापक्रम हिमांक (Freezing point) तक नीचे गिर जाता है तो दरारों में बंद पानी बर्फ बनता है। बर्फ पानी की अपेक्षा अधिक स्थान घेरती है। इससे चट्टानें टूट जाती हैं। जमीन में ऐसा होने पर पत्थर की पट्टियाँ और रजकण एक दूसरे से बर्फ द्वारा अलग हो जाते हैं। व सब ठोस आकार में जम जाते हैं पर ज्योंही बर्फ पिघलती है त्यों ही पानी जमीन को चिकनी मिट्टी या कीचड़ में परिणत कर देता है। प्रस्तर समूहों से अलग हुए पत्थर के टुकड़ों को या तो हवा उड़ा ले जाती है या पानी बहा ले जाता है।

(४) वर्षा—वर्षा का पानी जब जमीन पर गिरता है तो उसमें वायुमंडल की कई गैसें घुली रहती हैं। इन गैसों की मदद से प्रस्तर समूहों को अपना शिकार

बनाता है। प्रस्तर समूहों के कणों का पारस्परिक आकर्षण अर्थात् ससक्ति कमजोर पड जाती है। फलस्वरूप पत्थर चूर चूर हो जाते हैं। कार्बन द्विओषिद की सहायता से अधिक घुलनशील पदार्थ के कुछ अश को कर्णेतों के रूप में वर्षा का पानी बहा ले जाता है और पत्थर का बाकी का अश खोखला हो जाता है। जहाँ पर खाली चूने के पत्थर होते हैं वहाँ वे सब के सब वर्षा के पानी में घुल जाते है।

इस तरह से हवा और पानी की चपेटो से पत्थर के पत्थर टूट टूट कर अन्यत्र ले जाये जाते हैं और जो कुछ बच रहता है उससे मिट्टी बनती है जिसमें पेड़ पौधे पनपते हैं। जहाँ पर पेड पौधों की कमी होती हैं वहाँ हवा के साथ मिट्टी उडती हैं और इस तरह धूल की आँधियाँ चलती रहती हैं। मरुस्थलों मे ऐसा ही होता है। इन आँधियों स धूल के टीले के टीले बन जाते हैं। इनमें से बहुत से ५०-६० फुट ऊँचे होते हैं और कई कई तो २५० फुट तक ऊँचे पाये जाते हैं। इससे खनिज पदार्थ आदि ढक जाते हैं और फिर उन्हें खोज निकालना बड़ा कठिन काम होता है। ऐसे मरुस्थलों में अरब और गोबी के मरुस्थल मुख्य हैं। भारतवर्ष में थार का मरुस्थल सिंध एवं राजस्थान प्रात में है।

इन विनाश कारिणी शक्तियों के कारण प्रस्तर समूहों का नरम भाग अलग हो कर कठोर भाग

जीवन की कुछ बातें

जिस पृथ्वी पर हम लोग रहते हैं उसमें बहुत सा चीजें हैं। उनमें से हरेक या तो जीवधारी होता है या कोई निर्जीव पदार्थ। प्रत्येक प्राणि और पौधा जीवधारी समझा जाता है और पत्थर तथा धातु जैसी वस्तुएँ निर्जीव मानी जाती हैं।

जीवधारी पृथ्वी की सतह के उस भाग म जहाँ का वायुमंडल और मिट्टी जीवन के लिये उपयुक्त हों, पाये जाते हैं। भोजन के अतिरिक्त हवा या ओषजन जो वायुमंडल का एक भाग है और जो पानी में घुला रहता है तथा तापक्रम जीवन क लिये आवश्यक हैं। ओषजन का उपयोग श्वास प्रक्रिया में किया जाता है। पानी बहुत सी शारीरिक क्रियाओं के लिये आवश्यक है। बहुत कम प्राणी ३५ शतांशमेंड से अधिक और ०° शतांशमेंड से कम तापक्रम पर जीवित रह सकते हैं। सूर्य के प्रकाश से प्राप्त

शक्ति भी जीवन के लिये एक आवश्यक चीज है।

पृथ्वी की सतह पर सब कहीं एक सी अवस्था नहीं है। मरुस्थलों में वर्षा बहुत कम हो पाती है। ध्रुवों पर तापक्रम बहुत ही कम हो जाता है। इसके अतिरिक्त सूर्य की किरणें पृथ्वी की सतह पर अलग अलग अक्षाश में अलग अलग कोण बना कर पहुँचती है। इससे और पृथ्वी के सूर्य के चारों ओर भ्रमण करने से मौसम परिवर्तन होता रहता है। जीवधारियों को इन परिवर्तनों के अनुसार अपने को बनाना पड़ता है। बहुत से पक्षी एक देश से दूसरे देश को चले जाते हैं और कई प्राणी जाड़े की मौसम में माँद में पडे रहते हैं। कुछ प्राणियों के शरीर पर जाड़े के दिनों में मोटा आवरण बन जाता है।

वातावरण के अनुसार अपने को बना लेना जीवधारियो का एक खास गुण है। बहुत प्राचीन काल से यह क्रिया चलती आ रही है। फलत आधुनिक समय में इस भूमडल पर नाना प्रकार के असंख्य प्राणी और वृक्ष पाये जाते हैं। इन सब का विकास बहुत ही साधारण जीवों से हुआ है। ये साधारण जीव किस तरह पैदा हुए इसके बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता। जीवन का मूल जीवन-तत्व (Protoplasm) है। इसी से कोषों का निर्माण होता है। प्रारंभिक प्राणी एक कोषीय थे। वर्त्तमान एक कोषीय प्राणियों में अमीवा मुख्य है। जीवन तत्व का निर्माण कार्बन, ओषजन, उदजन, नत्रजन गधक और कुछ अन्य तत्वों से होता है। ये सब तत्व निर्जीव वस्तुओं में मिलते

हैं इसलिये यह खयाल किया जाता है कि एक कोषीय प्राणी जिनसे आगे चल कर बहु कोषीय प्राणियों की उत्पत्ति हुई निर्जीव वस्तुओं से करोड़ों वर्ष पहले पृथ्वी पर अज्ञात परिस्थितियों में उत्पन्न हुए थे।

भूगर्भ विज्ञान के प्राप्त विवरण इस बारे में हमें कुछ नहीं बतलाते। ये अधिकाश प्रस्तर चिह्न (Fossils) हैं। इन की इस ओर चुप्पी का कारण यह है कि प्रारंभिक प्राणियों के शरीर पर कोई कठोर भाग न था जो पत्थर बन सकता। वर्तमान समय के निम्न प्राणियों का ढाचा सरल होने के कारण भूगर्भ विज्ञान के विवरण में एक अंधकार युग का मिलना आशानुकूल है। बाद के विवरणों से यह सिद्ध हो जाता है कि नाना प्रकार के जीव पहले के सरलतर प्राणियों के विकास के परिणाम हैं।

विकासवाद के आचार्य चार्ल्स डार्विन हैं। इन्होंने सन १८५९ में The Origin of Species नाम की पुस्तक प्रकाशित की जिसमें इन्होंने अपने बीस साल से भी अधिक की खोज और अनुभवों का विवरण दिया है। इनके विकासवाद के सिद्धांत ने वैज्ञानिक ससार में हल चल मचा दी थी। संक्षेप में विकासवाद का सिद्धांत यह बतलाता है कि प्राणिया और वृक्षों की विभिन्न जातियों एक खास समूह के सारे जीवित प्राणिया में विभेद होने और जीवनसंग्राम में विजयी होने के लिये कई प्राणियों के अन्य जीवों की अपेक्षा वातावरण के अधिक अनुकूल

होने के कारण घनी हैं। जो लोग अपने को ऐसा बना लेते हैं कि वे जीवनसग्राम में अच्छी तरह से भाग ले सकें, जीवित रहते हैं और जो ऐसा नहीं कर पाते मिट कर लोप हो जाते हैं। निरंतर वातावरण के अनुकूल बने रहने और प्राणियों और वृक्षों में उन्नति के होने से असख्य जातियों का निर्माण हुआ है। "जो सब से अधिक योग्य होते हैं वे ही जीवनसग्राम में विजयी बनते हैं" यह विकासवाद का मूल सिद्धात हैं। जो कमजोर होते हैं उनका सर्वनाश अवश्यम्भावी है। कहा भी है—अजापुत्रं बलिं दद्यात् दैवो दुर्बल घातक।

यद्यपि जीवों की वृद्धि में वातावरण का मुख्य स्थान है फिर भी उससे अधिक नहीं तो उतना ही महत्वपूर्ण स्थान बपौती (Heredity) का है। इसके कारण एक पीढी से दूसरी पीढी को कई खास गुण और भुकाव प्राप्त होते हैं।

बपौती (Heredity) कहाँ तक भावी सतति पर प्रभाव डाल सकती है इस की पूर्णत खोज कई जीव विज्ञानवेत्ताओं ने की है। इस में श्री० मेंडल का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जीव विज्ञान के अध्ययन में आपकी खोज का मुख्य स्थान है।

अमीबा सरलतम प्राणी है। यह मुख्यत तालाबों में पाया जाता है। यह एक कोषीय प्राणी है। कोष के बीच में एक केंद्र होता है। यह कोष जब एक से दो में विभाजित हो जाता है तो दो प्राणी बन जाते

हैं। कोष में कुछ खाली स्थान भी पाये जाते हैं इन में से जो बड़ा होता है वह पानी को शरीर में अधिक या कम हो जाने से रोकता है। बाकी के स्थान भोजन प्राप्त करते समय बन जाते है। इसमें कोष भित्तिका (Cell wall) नहीं होती और न इसमें पर्ण हरिन (Chlorophyll) ही होता है। वृक्षों के कोषों में ये दोनों पाये जाते हैं। इस प्राणी का भोजन दूसरे जीवों से प्राप्त जीवन-तत्व (Protoplasm) होता है। इन जीवों को पकड़ने के लिये अमीबा में कोई कठोर भित्ति न होने के कारण इसका आकार निरंतर बदलता रहता है। इस तरह मिथ्यापाद (Psuodopodia) बनते रहते हैं जो भोजन को लपेटने का काम करते हैं। जा भोजन पचने से बच रहता है वह कोष में से निकाल दिया जाता है। यह अमीबा के सतह पर पहुँच जाता है और जब यह आगे बढ़ता है तो भोजन का यह अंश पीछे छूट जाता है। यह प्राणी काफी भ्रमण शील होता है। इसके विपरीत जितने भी पौधे होते हैं उनमें विद्यमान जीवन तत्व तो अवश्य गति शील होता है परंतु पौधे स्वयं अचल होते हैं।

छोटे छोटे जीव जिनमें से कुछ तो मनुष्यों के मित्र और बाकी सबसे भयंकर शत्रु होते हैं, कीटाणु यानी बेक्टीरिया कहलाते है। ये भी एक कोषीय जीव होते हैं। कई इन्हें प्राणियों में परिगणित करते हैं और कुछ इन्हें पौधों में गिनते हैं। ये बहुत जल्दी बढ़ते हैं, कुछ ही घंटों

में एक कीटाणु से लाखों कीटाणु बन जाते हैं। इनमें से जो हमारे लिये उपयोगी होते हैं उनसे खाद बनाने, सिरका तैयार करने, जूट के तार बनाने आदि काम लिये जाते हैं। शत्रु कीटाणु रोग प्रसारक होते हैं और क्षय हैजा, मोतीझिरा, प्लेग, मलेरिया आदि अनेक रोग फैलाते हैं। इनसे हमें निरंतर युद्ध करना पड़ता है।

विज्ञान से मानव जीवन को जो लाभ प्राप्त हुए हैं उनमें सबसे अधिक महत्व-पूर्ण शारीरिक और मानसिक रोगों पर विजय प्राप्त करने में मदद पहुँचाना और इस तरह से स्वस्थ जीवन को बिताते हुए आयु में वृद्धि करना है।

मानव शरीर सबसे अधिक नाज़ुक और उलझा हुआ होने के कारण यह स्वाभाविक है कि कभी कभी इसके कल पुर्जों में कुछ खराबी पैदा हो जाय और फल स्वरूप मनुष्य रोगाक्रांत हो जाय। शरीर के किसी भाग विशेष में कोई खराबी पैदा न होने पर भी यदि वह अवयव अपना काम ठीक तरह से करना बंद कर दे तो वह कार्यविकार कहलायेगा। यह कार्यविकार थोड़ी सी सावधानी और चिकित्सा से मिट जाता है और वह अवयव अपने स्वाभाविक ढंग से काम करने लगता है। ऐसे रोगों में अपच मुख्य है। अपच आमाशय रस के अधिक या कम अम्लीय होने के कारण होता है। ऐसा होने पर आमाशय अपना काम ठीक तरह से नहीं कर पाता। फल यह होता है कि भोजन का पूरी तरह से एकी करण (Assimilation) नहीं हो पाता। औषधि लेने से आमाशय के रस में अम्ल

उचित परिणाम में हो जाता है। कभी कभी अपच आमा शय में फोड़े के होने से भी हो जाता है। ऐसे समय में चिकित्सक के लिये ठीक निदान करना आवश्यक होता है।

कई रोग ऐसे होते हैं जो एक दूसरे के संपर्क से फैलते हैं। ये रोग संसर्गज कहलाते हैं पर अनेक रोग ऐसे होते हैं जो बिना सम्पर्क के हवा, जल, वस्त्र आदि द्वारा एक से दूसरे को हो जाते हैं। ऐसे रोग संक्रामक रोग कहलाते हैं। इनमें हैजा, मोतीझरा इन्फ्लुएंजा, चेचक आदि रोग मुख्य हैं।

रोग फैलाने में मक्खी, मच्छर, पिस्सू आदि प्राणी बड़ा भाग लेते हैं। मच्छरों से मलेरिया, पिस्सू से प्लेग और मक्खियों से मोतीझरा, हैजा आदि अनेक रोग फैलते हैं। रोगी के श्वास के साथ रोग के असंख्य कीटाणु बाहर निकलते हैं जो आस पास की हवा में फैल जाते हैं। ये श्वास के साथ स्वस्थ मनुष्य के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। राजयक्ष्मा का प्रसार इसी तरह से होता है। कभी कभी रोगी के वस्त्र और दूसरी वस्तुओं के उपयोग करने से दूसरे मनुष्य भी रोगाक्रान्त हो जाते हैं।

आधुनिक सभ्यता ने मनुष्यों को शहर की ओर आकर्षित किया है। इससे इन्फ्लुएंजा की तरह कई रोग अधिक फैलते हैं। इसके साथ साथ ही आधुनिक सभ्यता ने हमें सफाई से रहने की भी शिक्षा दी है। इस से कई रोगों का निराकरण भी हुआ है। देहात में लोग

चाहे जहाँ मलमूत्र डाल देते हैं। इससे रोग के कीटाणु इधर उधर फैलते रहते हैं। नये ढंग से शिशुपालन होने और बाल विवाह के अपेक्षाकृत कम होने से बाल-मृत्यु अवश्य ही कम होनी चाहिये। भारत जैसे देश में फिर भी जहाँ शिक्षा का प्रसार लगभग ८ प्रतिशत है और स्त्रीशिक्षा नहीं के बराबर है, शिशुओं की मृत्यु सख्या में कुछ भी कमी नहीं पाई जाती। यह एक संताप की बात है।

विज्ञान ने औषधविज्ञान में बड़ा चमत्कार कर दिखाया है। पहले चीर फाड करवाना आफत मोल लेना था। यहाँ तक कि लोगों को प्राणों से हाथ धोना पड़ता था। एक तो चीर फाड़ करने वाले नाई वगैरह हुआ करते थे जिन्हें शरीरविज्ञान का एक हर्फ तक समझ में नहीं आता था। दूसरे वे चीर फाड़ करने के बाद घाव को वैसा ही खुला रख छोड़ते थे जो आगे चल कर विषैला हो जाता था। कीटाणुओं का पता ही न था। घाव पर कोई प्रतिविष न लगाने से कीटाणुओं के लिये द्वार खुला रहता था। अत में रोगी को दूसरे लोक को प्रयाण करना पड़ता था।

आजकल चीरफाड करने से पहले उस स्थान पर सवेदना नाशक पदार्थ लगा दिया जाता है या रोगी को सुंघा दिया जाता है जिससे रोगी को ऑपरेशन होते समय पीड़ा नहीं मालूम होती। पहले लोग अफीम आदि नशीले पदार्थ रोगी को देते थे जिससे नशे में

उसे पीडा का अनुभव न हो । सन् १८४२ में हंफ्री डेवी ने लिखा कि (Nitrous Oxide) नत्रस आपिद, हास्यप्रद गैस, का प्रयोग दांत निकालने में किया जा सकता है । इसी समय संवेदना नाशक के रूप में ईथर का प्रयोग भी पहले पहल किया गया । क्लोरोफार्म का उपयोग सन १८६४ में किया गया । स्थानीय संवेदना नाशक पदार्थों में कोकेन मुख्य है । चूंकि कोकेन का पश्चादूगामी असर बुरा होता है इसलिये उसके स्थान पर नोवोकेन नामक पदार्थ का उपयोग किया जाता है ।

एडवर्ड येनेर ने चेचक के टीके का आविष्कार किया । उस समय यह बात मालूम थी कि यदि किसी व्यक्ति को गोधन शीतला (Cowpox) हो जाय तो उस चेचक का रोग नहीं होता । इससे उस व्यक्ति के रक्त में रोगक्षमता पैदा हो जाती है । पीछे येनेर ने यह सोचा कि यदि आदमी के शरीर में रोगग्रस्त गाय का चेप सूई द्वारा प्रविष्ट करा दिया जाय तो वह चेचक के रोग का शिकार न होगा । इस विचार का परिणाम टीके का आविष्कार था । इससे चेचक के रोगी बहुत कम हो गये ।

न केवल चेचक का ही टीका लगाया जाता है प्रत्युत मोतीझरा, प्लेग, डिफ्थीरिया आदि रोगों का भी टीका लगता है । टीके के चेप में उस रोग के कुछ कमजोर या मृत कीटाणु होते हैं । इससे जिस मनुष्य के टीका लगाया

जाता है यह रोगाक्रांत हो जाता है पर यह रोग बहुत ही साधारण होता है। इससे उस मनुष्य के रक्त में रोग क्षमता उत्पन्न हो जाती है।

हमारे रक्त में दो तरह के अणु पाये जाते हैं—रक्ताणु और श्वेताणु। इन में से रक्ताणुओं की संख्या बहुत अधिक होती है। ये अणु रक्तवारि (Plasma) में घूमते रहते हैं। श्वेताणुओं का आकार बदलता रहता है। रक्ताणु लगभग दो हफ्ते तक और श्वेताणु इससे कुछ अधिक काल तक रहते हैं। इसके बाद नये अणु बन जाते हैं। रक्ताणुओं का लाल रंग रक्त में मौजूद हीमोग्लोबिन के कारण है। हीमोग्लोबिन में लौह होता है जो रक्त को लाल बनाता है। रक्ताणु फुफ्फुसों में वर्त्तमान हवा में से ओषजन को लेकर सारे शरीर में घूमते हैं। श्वेताणु रोगों से युद्ध ठानने का काम करते हैं। ज्यों ही किसी रोग के कीटाणु शरीर के जिस स्थान पर रक्त में घुसे ये श्वेताणु अविलंब वहाँ एकत्र हो कर उन पर धावा बोल देते हैं और जब तक कीटाणुओं को नष्ट नहीं कर देते, युद्ध क्षेत्र से पैर पीछे नहीं उठाते। यदि श्वेताणु कमजोर हुए तो कीटाणु विजयी हो जाते हैं और फल यह होता है कि मनुष्य रोगी बन जाता है। इससे आपको ज्ञात हो जायगा कि रक्त शरीर के पोषण के अलावा रक्षक का काम भी करता है।

रक्त जब घाव से बाहर निकलता है तो वह जमने लगता है। रक्तवारि ततुमय फ्राइब्रिन और पीले पदार्थ

सीरम में परिणत होकर अलग हो जाता है। फ़ाइब्रिन अणुओं को एकत्र करता है और सीरस बाहर निकल जाता है। यदि घाव मामूली हुआ तो खून का और बहना बंद हो जाता है। लौह हरिद (Iron chloride) लगाने से रक्त का स्कंधन (Coagulation) जल्दी हो जाता है।

एक स्वस्थ मनुष्य के शरीर में लगभग ७ सेर खून होता है। खून हृदय से रक्त नलिकाओं द्वारा सारे शरीर में भ्रमण करता है। हृदय की गति विभिन्न व्यक्तियों में अलग अलग होती है। हृदय की धड़कन औसतन ७२ प्रति मिनट होती है। इस चाल से लगभग दो सेर रक्त प्रति मिनट बायें क्षेपककोष्ठ (Left ventricle) से धमनियों (Arteries) में भेजा जाता है। व्यायाम और मानसिक उत्तेजना इस गति को बढ़ा देती हैं।

मनुष्य के हृदय में चार कोष्ठ होते हैं। इनमें दो क्षेपक कोष्ठ और बाकी के दो मातृककोष्ठ (Auricles) कहलाते हैं। इनके कारण शुद्ध रक्त दूषित रक्त के साथ कभी नहीं मिल पाता। क्षेपककोष्ठ हृदय के, जो मांस का बना हुआ सुदृढ़ अवयव है पीछे और मातृककोष्ठ सामने होते हैं। मातृककोष्ठ क्षेपककोष्ठ से हृदय के उसी तरफ एक छिद्र से मिलता है। रक्त पहले प्रथम क्षेपक कोष्ठ से मांसपेशियों के दबने से फुफ्फुसीया धमनी (Pulmonary Artery) में से होकर फेफड़ों में पहुँचता है। यहाँ पर रक्त की शुद्धि होती है और शुद्ध रक्त फुफ्फुसीया शिरा (Pulmonary vein) में से होकर पहले बायें

कोष्ठ में पहुँचता है। यहाँ से रक्त दूसरे क्षेपककोष्ठ में पहुँचता है और वहाँ से धमनियों में से भेजा जाकर फेफड़ों को छोड़ कर सारे शरीर में भ्रमण करता है। धमनियों से रक्त केशिकाओं में होकर शिराओं में जाता है और उनमें से होता हुआ वापस दूसरे ग्राहककोष्ठ में पहुँचता है। यहाँ से वह फिर पहले क्षेपककोष्ठ में भेज दिया जाता है। इस तरह से रक्त का परिभ्रमण चक्र समाप्त होता है।

ऊपर कहा जा चुका है कि उलझी हुई जीवन ग्रंथि वाले प्राणियों का विकास सरलतम एक कोषीय जीव से हुआ। विकासवाद की चरम सीमा मानव प्राणी है। कई लोग ऐसा भी सोचते हैं कि विकासवाद का अंत नहीं हुआ है और आगे चल कर मानवेतर प्राणी भी उत्पन्न होगा। मनुष्य जिस वर्ग में परिगणित होता है वह स्तनपायी वर्ग है। इस वर्ग के सारे प्राणी अपनी माँ के स्तन से दुग्धपान करते हैं। इसीलिये इस वर्ग को स्तनपायी वर्ग (Mammalia) कहते हैं। इसके अतिरिक्त प्राणियों के कई वर्ग हैं। उनका संक्षिप्त वर्गीकरण आगे दिया जाता है।

प्राणिवर्ग
रीढ़वाले प्राणी
मत्स्यवर्ग (मछली)
मेंढकवर्ग (मेंढक)
सरिसृपादिवर्ग (साँप, मगर, कछुआ आदि)
पक्षीवर्ग (कौवा मोर, कबूतर आदि)
स्तनपायीवर्ग (चूहा उल्लू, बिल्ली गाय बाघ हिरन सिंह मनुष्य आदि)
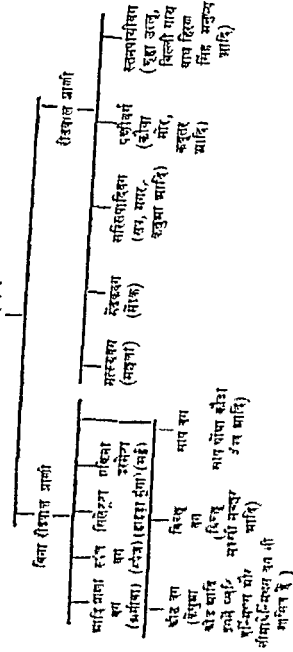
अर्कमीदिस के संबंध में

इटली के दक्षिण में सिसिली द्वीप है। प्राचीन काल मे यह द्वीप अपने नगर, मंदिर और महलों के लिये प्रसिद्ध था। यहाँ पर एटना नामक एक बड़ा भारी ज्वालामुखी पर्वत है। यहाँ पर अक्सर भूकंप आया करते हैं। सन १९०८ के भूकंप ने मेसिना नगर को बरबाद कर डाला। सिसिली का सबसे बड़ा नगर सिरेक्यूज था। वर्त्तमान काल में यहाँ पर बहुत कम लोग रहते हैं। यह एक अलग द्वीप पर बना हुआ है और सिसिली द्वीप से यह एक पुल द्वारा संबद्ध है। प्राचीन काल म इस नगर में लगभग २५-३० लाख मनुष्य रहते थे। अर्कमीदिस का जन्म ईसा से ३०० वर्ष पूर्व इसी नगर में हुआ था।

अर्कमीदिस यहाँ के राजा का मित्र था और स्वयं एक धनाढ्य एवं बुद्धिमान मनुष्य था। यदि वह चाहता तो अपना समय भोग विलास में व्यतीत कर

सकता था। पर वह ऐसा आदमी न था। उसका झुकाव विज्ञान के अध्ययन की ओर था। वह सत्य का अन्वेषक था और उसे प्रकृति के अध्ययन में आनंद आता था। उसे इस बात का विश्वास था कि सब बातें एक निश्चित नियम के अनुसार होती हैं और यदि वह इस नियम को मालूम कर सके तो वह सारे संसार पर राज्य कर सकता है।

अर्कमीदिस ने जहाज के बनाने वाले और मल्लाह लोगों को बहुत से भारी वजन उठाते देखा। उसने उन्हें बतलाया कि किस तरह उन्हें बिना अधिक जोर लगाये उठाया जा सकता है। उस समय लोग भारी वजन उठाने के लिये उत्तोलक (Lever) का उपयोग करना जानते थे। उत्तोलक एक छड़ होता है। यह जहाँ पर घूमता है वह स्थान आलम्ब (Fulcrum) कहलाता है। छड़ के एक ओर वजन रखा जाता है और दूसरी तरफ उसे उठाने के लिये जोर लगाया जाता है। यदि दोनों ओर एक ही वजन के भाग रख दिये जावें तो उत्तोलक समतुलित अवस्था में होता है। अर्कमीदिस ने उन जहाज बनाने वालों को बतलाया कि यदि आलम्ब से वजन तक की दूरी कम करदी जाय और जहाँ पर जोर लगाया जाता है वहाँ से आलम्ब तक की दूरी बढ़ा दी जाय तो बहुत कम जोर लगाने से ही उस भारी वजन को ऊपर उठाया जा सकता है। भार और उससे आलम्ब तक की दूरी का

गुणनफल घूर्णबल (Moment) कहलाता है। प्रतिरोध (Resistance) का घूर्णबल उद्योग (Effort) के घूर्णबल के बराबर होना चाहिये। यदि प्रतिरोध की भुजा (Arm) की लम्बाई कम होगी और उद्योग की भुजा की लम्बाई अधिक होगी तो स्वभावतः प्रतिरोध अधिक होना चाहिये और उसे रोकने के लिये थोड़े से उद्योग की ही आवश्यकता पड़ेगी। इस तरह से बड़े भारी प्रतिरोध पर थोड़े से उद्योग से विजय प्राप्त की जा सकती है। मान लीजिये प्रतिरोध १० पाउंड के बराबर है और उसकी भुजा की लम्बाई २ फुट है। यदि उद्योग की भुजा की लम्बाई भी दो फुट है तो १० पाउंड के प्रतिरोध को रोकने के लिये हमें १० पाउंड के बराबर ही उद्योग करना पड़ेगा। प्रतिरोध की भुजा की लम्बाई घटा कर १ फुट कर दीजिये। प्रतिरोध का घूर्णबल १० होगा और उद्योग की भुजा २ फुट लम्बी है ही। इसलिये उद्योग का घूर्णबल १० होने के लिये हमें पाँच पाउंड के बराबर उद्योग करना पड़ेगा। अतः प्रतिरोध से उद्योग आधा होगया। अर्कमीदिस ने कहा—यदि आप लम्बा उत्तोलक तैयार कर सकें तो ऐसा कोई वजन नहीं जो उठाया न जा सके। उसने अपनी यह खोज अपने मित्र सिरेक्यूज नरेश को बतलाई और कहा कि यदि आप मुझे खड़े होने लिये कुछ जगह दे सकें तो मैं सारे संसार को उठा सकता हूँ। अर्कमीदिस जानता था कि पृथ्वी को उठाने के लिये उत्तोलक बहुत ही मजबूत और पृथ्वी के बराबर मोटा होना चाहिये अन्यथा

वह वजन को सहन नहीं कर सकेगा। इसके अतिरिक्त उत्तोलक के लिये एक स्थिर आधार की आवश्यकता होगी। उसे अपने लिये भी पूर्णतया स्थिर जगह की जरूरत पड़ेगी जहाँ पर वह खड़ा होकर आवश्यक जोर लगा सके। पृथ्वी के बाहर आकाश में कहीं स्थिर जगह नहीं है। इसलिये जैसा आर्कमीदिस ने बतलाया वैसा प्रयोग करने की चेष्टा करना सम्भव नहीं।

सिरेक्यूज के राजा ने अपने एक सुनार को कुछ सोना दिया और उसे आदेश दिया कि इसका एक मुकुट बना कर ले आओ। कुछ दिनों बाद सुनार मुकुट बना कर ले आया। राजा ने मुकुट को तोला तो उसका वजन ठीक उतना ही निकला जितना उसे सोना दिया गया था। एक आदमी ने राजा से यह कहा कि सुनार ने सोने में कुछ चाँदी मिला दी है और बाकी सोना रख लिया है। राजा न्याय प्रिय होने के कारण सुनार को बिना उसका अपराध प्रमाणित हुए दंड नहीं देना चाहता था। उसने आर्कमीदिस को बुला कर यह आदेश दिया कि तुम इस बात का पता लगाओ कि इस में चादी मिली हुई है या नहीं। आर्कमीदिस ने स्वीकार तो कर लिया पर उसे कुछ सूझता नहीं था कि इसका किस तरह पता लगाया जाय। वजन में कुछ अंतर था ही नहीं। दिखने में वह बढ़िया सोना मालूम होता था। आर्कमीदिस ने एक चांदी और एक सोने का गोला तैयार किया और उनका आकार एक ही रखा। उनका

तोलने से उसे यह बात मालूम हुई कि सोने का वजन चांदी से दुगुना है। उसने सोचा यदि मुकुट गला कर वर्गाकार रूप मे ढाल दिया जाय और शुद्ध सोना भी उसी वर्गाकार रूप में ढाला जाय और फिर यदि दोनों को तोला जाय तो यह मालूम हो सकता है कि मुकुट में शुद्ध मिलावट है या नहीं। यदि मुकुट का सोना हलका हुआ तो यह सिद्ध हो जायगा कि उसमें चांदी मिलाई गई है क्योंकि चांदी सोने से हलकी होती है। उसने एक बार मुकुट के गलाने का विचार किया पर वह इतना खूबसूरत बना हुआ था कि उसे यह अच्छा नहीं मालूम हुआ कि ऐसी कलामय वस्तु नष्ट कर दी जाय।

अर्कमीदिस की यह आदत थी कि वह जब तक किसी समस्या को सुलझा न लेता उसका पीछा न छोड़ता था और इस बीच में अपने मस्तिष्क में और कोई चीज नहीं आने देता था। कभी कभी वह अपने शरीर पर मालिश किये तेल पर विभिन्न आकृतियों का निर्माण किया करता था और इस तरह समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न करता था।

एक दिन अर्कमीदिस स्नान कर रहा था। वह अपने बराबर के एक बड़े भारी प्याले में पानी भर कर नहाया करता था। इस प्याले के चारों ओर पानी के बहने के लिये ढाल बनी हुई थी। प्याला पानी से लबालब भरा हुआ था और जब वह भीतर घुसने लगा तो पानी बाहर की ओर बहने लगा। जब वह बाहर

निकला तो प्याला कुछ खाली होगया। उसने अपने आयतन के बराबर पानी को निकाल दिया था। यह देखकर उसके मस्तिष्क में सहसा एक विचार उत्पन्न हुआ और उसे इतनी अधिक प्रसन्नता हुई कि वह इस आवेश में बिना अपने शरीर को पोंछे और कपड़े पहने यह चिल्लाता हुआ कि मैंने मालूम कर लिया है घर को दौड़ा।

उसने एक बर्तन में ऊपर तक पानी भरा और उसमें मुकुट डोरे से बांध कर लटका दिया। बर्तन में से कुछ पानी बहगया। अब उसने मुकुट को बाहर निकाल लिया। नपने से उसने उस बर्तन में पानी डाल कर देखा कि उसे ऊपर तक भरने में कितने पानी की आवश्यकता होती है। इतने पानी का आयतन मुकुट के बराबर है। अब उसने मुकुट के बराबर के वजन के सोने और चांदी के गोले बनवाये और उन्हें अलग अलग पानी में डाल कर देखा कि वे कितना पानी हटाते हैं। सोने के गोले ने सब से कम और चांदी के गोले ने सबसे अधिक पानी हटाया। मुकुट ने सोने के गोले से अधिक और चांदी के गोले से कम पानी हटाया। इससे यह मालूम होगया कि मुकुट में चांदी मिली हुई है। चांदी के हलकी होने से सोने के बराबर वजन की चांदी का आयतन सोने से अधिक होता है।

आर्कमीदिस ने अब कई तरह के गोले बनाये। उनमें चांदी और सोना विभिन्न मात्राओं में मिलाया गया था

पर उन सबका वजन मुकुट के वजन के बराबर रखा गया। इस तरह से उसे एक गोला ऐसा मिला जिसने पानी में डाले जाने पर मुकुट के बराबर पानी हटाया। अर्कमीदिस राजा के पास पहुँचा और उसे बतलाया कि मुकुट में कितनी चांदी मिली हुई है और सुनार ने कितना सोना चुरा लिया है।

राजा ने इस पर अर्कमीदिस का आभार माना और सुनार को बुला कर डाँटा। सुनार ने अपना अपराध स्वीकार किया और राजा को सोना लौटा दिया।

इस तरह से अर्कमीदिस ने वस्तुओं का आपेक्षिक घनत्व मालूम करने का नया सिद्धांत खोज निकाला। एक सेर सीसा एक सेर घास से कम स्थान घेरता है, इसलिये सीसा घास से अधिक घना समझा जाता है। किसी चीज का घनत्व मालूम करने के लिये उसका आयतन और वजन मालूम होना चाहिये। आयतन की इकाई का वजन उस चीज का घनत्व होता है। मीट्रिक विधि में एक घन शताशमीटर का वजन किसी वस्तु का घनत्व कहलाता है। वजन को आयतन से भाग देने से घनत्व प्राप्त होता है। आयतन मालूम करने के लिये मापक जार (Graduated Cylinder) की सहायता ली जाती है। ठोस पदार्थ को पानी से कुछ भरे हुए मापक जार में डालने से पानी ऊपर चढ आता है। जितना पानी ऊपर चढ़ता है वह उसका आयतन कहलाता है। द्रव वस्तु का घनत्व मापक जार, ब्यूरेट या पिपेट की सहायता

से मालूम किया जा सकता है। वजन तुला की सहायता से आसानी से मालूम हो सकता है।

आपेक्षिक घनत्व किसी एक पदार्थ के घनत्व से दूसरे पदार्थ के घनत्व की तुलना करने से मालूम किया जाता है। अधिकतर पानी के घनत्व से तुलना की जाती है क्योंकि पानी का घनत्व १ ग्राम प्रति घन शतांशमीटर है। सब पदार्थों का आपेक्षिक घनत्व अलग अलग होता है। अतः किसी अज्ञात पदार्थ का घनत्व मालूम करके यह बतलाया जा सकता है कि यह पदार्थ क्या है।

कोई भी पदार्थ जब पानी में होता है तो हलका मालूम होता है परन्तु जब यह पदार्थ पानी में से निकाल लिया जाता है तो अपेक्षाकृत भारी हो जाता है। जब कोई चीज पानी में डाली जाती है तो यह अपने आयतन के बराबर पानी को हटा देती है। उतने आयतन के पानी का जितना वजन होता है उतना उस चीज का वजन कम हो जाता है। वजन की यह प्रत्यक्ष कमी वास्तविक नहीं है। संक्षेप में आर्कमीडिस का यही सिद्धान्त है। इस से आपेक्षिक घनत्व मालूम करने के लिये किसी वस्तु को हवा में तौल लिया जाता है और उसे फिर पानी में तौलते हैं। हवा में मालूम किये गये वजन को पानी में भार की कमी से भाग देने पर जो भजनफल आता है यह उस पदार्थ का आपेक्षिक घनत्व है।

आप देखेंगे कि हलकी चीजें पानी में नहीं डूबतीं। ये पानी की सतह पर तैरती हैं। उनका कुछ भाग बराबर

ही पानी में डूबा रहता है। यह डूबा हुआ भाग इतना पानी हटा देता है कि उस पानी का वजन उस पदार्थ के सारे वजन के बराबर होता है। ऐसा न होने पर वह पदार्थ डूब जाता है। जहाज इसीलिये पानी में तैरते हैं। समुद्र के जल की अपेक्षा नदियों के जल में जहाज का कुछ अधिक भाग डूबता है। इस का कारण समुद्र के जल का अधिक घना होना है।

आपेक्षिक घनत्व से यह भी मालूम किया जा सकता है कि दूध में कितना पानी मिला हुआ है। गाय के शुद्ध दूध का आपेक्षिक घनत्व १.०२९ से १.०३३ तक होता है।

जब रोमन लोगों ने सिरेक्यूज नगर पर आक्रमण किया तो अर्कमीदिस ने नगर की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया। उसने कई युद्ध-एंजिनों को बनाया जिनकी सहायता से शत्रुओं की सेना पर शिलाखंड फेंके जा सकते थे। इससे शत्रुओं के जहाज डूब जाते थे। रोमन सेनापति मार्सेलस ने अर्कमीदिस की बड़ी प्रशंसा की और जब सिरेक्यूज नगर पर रोमन लोगों का आधिपत्य होगया तो उसने अपने सिपाहियों को अर्कमीदिस को न मारने के लिये आदेश दिया। इनमें से एक अर्कमीदिस के पास उस समय पहुँचा जब वह धूल में छड़ी से एक समस्या सुलझाने का प्रयत्न कर रहा था। उसने अर्कमीदिस से उसका नाम पूछा। अर्कमीदिस ने उसे तबतक ठहरने के लिये कहा जब

तक वह समस्या हल न की जा सके और उससे धूल में बना आकृतियों को न मिटाने के लिये प्रार्थना की। इस पर सिपाही ने उसे मार डाला। एक बड़े भारी वैज्ञानिक का इस तरह से अंत हुआ।

वायुमंडल की कथा

प्रत्येक वस्तु जो जगह घेरती है, पदार्थ है। पदार्थ की तीन अवस्थाएँ हैं—ठोस, द्रव और गैसीय। एक ही पदार्थ तीन अवस्थाओं में मिल सकता है। पानी की तीन अवस्थाएँ बर्फ, जल और भाफ हैं। ठोस और द्रव पदार्थ में एक मुख्य अंतर यह है कि ठोस पदार्थ अपने आधार पर नीचे की तरफ दवाव डालता है पर द्रव पदार्थ आमने-सामने, वगल की ओर तथा ऊपर की तरफ भी दवाव डालता है। द्रव पदार्थ का दवाव गहराई पर निर्भर करता है। अधिक गहराई पर दवाव भी अधिक होगा।

वायुमंडल में कई गैसें पाई जाती हैं। उनमें ओषजन, नत्रजन, कार्बन द्विओषिद, उदजन, हीलियम, नियन, जेनन, क्रिप्टन जलवाष्प आदि मुख्य हैं। इनके अलावा हवा में रजकण भी पर्याप्त मात्रा में पाये जाते

हैं। नाना तरह के जीवाणु वायुमंडल के निम्न स्तर में बहुत मिलते हैं।

वायुमंडल के क्रम से दो स्तर हैं। पहला स्तर जो लगभग ७ मील ऊँचा है ट्रोपोस्फीयर (Troposphere) कहलाता है। इस स्तर में बादल और हवा की लहरें मिलती हैं। इसके ऊपर स्ट्रेटोस्फीयर है जहाँ तापक्रम लगभग –५५ शताशमेड रहता है। इसमें न तो जलवाष्प मिलती है और न बादल और वाहन लहरें (Convection Currents) ही पाई जाती हैं। ३॥ मील की ऊँचाई पर दबावमापक यन्त्र (Barometer) का पारद स्तभ ३८ शताशमीटर ही रह जाता है। इससे यह मालूम होता है कि इसके ऊपर लगभग आधा वायुमंडल और है क्योंकि पृथ्वी की सतह पर हवा का दबाव ७६ शताशमीटर होता है। २० मील की ऊँचाई पर हवा का दबाव लगभग ७ सहस्राशमीटर ही रह जाता है। अतः इस पर ९ प्रतिशत वायुमंडल और है। वायुमंडल की ऊँचाई कहाँ तक है यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता। कई लोगों के मत से यह १०० मील है और दूसरों के मत के अनुसार वायुमंडल २०० मील ऊँचा है। स्ट्रेटोस्फीयर तक पहुँचना कुछ मुश्किल होता है क्योंकि उड़ाकों के पास बिजली से गर्म हो जाने वाले वस्त्र और श्वास प्रक्रिया के लिये ऑक्सिजन ले जाने की जरूरत पड़ती है। स्वामी गुब्बारे १४ मील ऊँचे उड़ सके हैं। सन् १९३५ ई० में कैप्टेन स्टीवेंस और एंडरसन एक बड़

हीलियम गैस से भरे हुए गुब्बारे से बधे हुए गोल गोखले घेरे मे उड कर १३७ मील ऊँचे जाकर वापस सकुशल लौट आये।

यूनान के पुराने निवासी यह बात तो जानते थे कि हवा में कुछ वजन होता है पर उन्हें यह मालूम न था कि हवा इतनी भारी होती है कि कमरे में भरी हुई हवा का वजन लगभग डेढ़ मन होता है। द्रव पदार्थ की तरह गैसें भी भ्वाव डालती हैं पर यह बात पहले के लोगों को मालूम न थी। यूनानियों का यह विश्वास था कि कोई स्थान शून्य नहीं रह सकता क्योंकि प्रकृति को शून्य से स्वभावत घृणा है। इसलिये वह शून्य स्थान को तत्काल किसी पदार्थ से भर देती है। यदि नल को पिस्टन से बद कर दिया जाय और पिस्टन को एक तरफ खींचा जाय तो हवा पिस्टन के साथ निकलेगी। अब यदि नल का किनारा बद कर दिया तो पिस्टन बड़ी मुश्किल से खींचा जा सकेगा। यूनानवालों ने इसका कारण प्रकृति की शून्य स्थान के प्रति घृणा मानी। नल पर उँगली रखने पर उन्हें मालूम हुआ कि यह नल की तरफ खींची जा रही है। प्रकृति शून्य स्थान को भरने के लिये इतनी तत्पर है कि यह उँगली को उस भरने के लिये खींच रही है। इससे पंप द्वारा जल निकालने का काम लिया जाने लगा। पप की नली पानी में डूबनी चाहिये। पिस्टन को खींचने पर नली में पानी ऊपर चढ़ता है। इस तरह पानी ऊपर खींचा जा सकता है।

गेलिलियो के जमाने में कई लोगों ने लंब नल लगा कर पंप से पानी खींचना चाहा पर ३३ फीट से अधिक ऊँचाई पर पानी न खींचा जा सका। इ ऊँचाई पर प्रकृति की शून्य के प्रति घृणा दूर हो जाती है लोगों का इस पर शक होने लगा और उन्होंने साफ सा यह बात कही कि प्रकृति की शून्य के प्रति कोई घृ नहीं। अगर ऐसी कोई बात होती तो पानी चाहे जितनी ऊँचा तक खींचा जा सकना चाहिये। गेलिलियो के शिष्य टोरिसे ने एक काँच की नली को पारे से भरने का निश्चय कि और सोचा कि पारा लगभग ढाई फीट ऊँचाई तक खींच जा सकता है क्योंकि पानी से लगभग चौदह गुन भारी होने से उसका प्रतिरोध भी पानी से चौदह गुन अधिक होगा। टोरिसेली को उपयुक्त काँच की नली मिल सकी। इसलिये यह प्रयोग सन १६४३ में उस एक मित्र ने किया। एक काँच की तीन फुट लंबी नली का एक ओर का किनारा बंद कर दिया गया और फि उसमें पारा भरा गया। उँगली की सहायता से खुले मुँ का बंद करके नली को उलटा कर पारे के बर्तन में सीधी रख कर उँगली हटा ली गई। इससे कुछ पारा बाहर बर्तन म निकल आया। नली के ऊपर की ओर लगभग ६ इं खाली जगह रह गई। यह स्थान हवा से शून्य था। प्रसिद्ध फ्रेंच वैज्ञानिक पास्कल ने जब यह सुना तो स्पष्ट कहा कि मालूम होता है प्रकृति में शून्य स्थान असंभव नहीं है। उसे शून्य के प्रति कोई ऐसी घृणा नहीं है जैसा

कई लोग सोचते हैं ।

यदि दो ऊर्ध्वाधर नलिकाओं को नीचे से आपस में जोड़ दिया जाय और उनमें से एक में भारी और दूसरे में हलका द्रव पदार्थ डाल दिया जाय तो पहली नलिका में भारी द्रव हलके द्रव के लंबे स्तभ को प्रतितुलित (Counterbalance) कर सकेगा । यदि दोनों द्रव पदार्थ एक ही घनत्व के हों तो दोनो के स्तभों की लंबाई एक ही होगी । इसी तरह यदि एक नलिका में पारा डाला जाय और दूसरी नलिका में हवा हो तो छोटा-सा पारद स्तभ दूसरी नली में मौजूद सारी हवा का सतुलन कर सकेगा । पारद स्तंभ की लबाई वायु स्तंभ की लंबाई से उतनी कम होगी जितना पारा हवा से भारी है । ये दोनों नलिकायें वायुदाबमापक यन्त्र (Barometer) का काम देती हैं। पारद स्तभ का कम या अधिक होना यह सूचित करता है कि हवा का दबाव घट या बढ़ गया है ।

वायुदाबमापक यंत्र में पारे की नली ऊपर से बद रहती है । इसकी लंबाई लगभग ३ फुट होती है । नली की चौडाई चाहे जितनी हो सकती है क्योंकि दबाव ऊँचाई पर निर्भर करता है । हवा-नली भी चाहे जितनी चौडी हो सकती है और यह भी जरूरी नहीं है कि यह हो ही । हवा के बुदबुदे शून्य स्थान तक नहीं पहुंचने चाहिये । पारे की नली को नीचे से ऊपर की ओर मोड देने से हवा वहाँ तक नहीं पहुँच पाती । इस तरह से पारा लंबी और छोटी दोनो नलियों में घटता बढ़ता है ।

छोटी नली ऊपर से मुंदी होने से उस पर हवा का दबाव पड़ता है उस दबाव को मालूम करने के लिये हम दोनों नलियों में पारे के तल के अंतर को नाप लेते हैं।

यदि पारे की लंबाई का सीधा नाप लेने से हवा का दबाव मालूम किया जा सके तो यह अधिक सुविधाजनक ढंग होगा। इसलिये पारे की नली के नीचे के किनारे को पारे के बड़े बर्तन में डुबो दिया जाता है। इस बर्तन के पारे के तल में थोड़े से पारे के घटने या बढ़ जाने से कुछ खास अंतर नहीं पड़ता। आधुनिक वायुदाबमापक यंत्र इसी तरह बनाये जाते हैं। ऐसे यंत्रों में फोर्टिन का वायुदाबमापक यंत्र मुख्य है।

पास्कल का कहना है कि यदि हवा का दबाव पारे को शून्य स्थान घेरने को विवश करता है तो पहाड़ों पर पारदस्तम्भ की ऊँचाई समुद्र की सतह पर की ऊँचाई की अपेक्षा कम होनी चाहिये क्योंकि वहाँ पर वायु का दबाव काफी कम होता है। उसने अपने साले को जो [illegible] ग्राम में रहता था वायुदाबमापक यंत्र को एक ऊँचे पहाड़ पर ले जाने के लिये लिखा। ऐसा करने पर यह मालूम हुआ कि पारदस्तंभ तीन इंच नीचा गिर गया।

लोगों को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ कि हवा का दबाव इतना अधिक हो सकता है कि वह गुरुत्वाकर्षण के होते हुए पारे को ऊपर उठाये रखे। यह एक विचित्र बात थी कि हवा जैसी हलकी चीज से इतना अधिक दबाव प्राप्त किया जा सकता है। लोगों ने पारे के दबाव

को तौल कर मालूम किया कि तीस इंच ऊँचे पारे का स्तंभ आधार की सतह पर प्रति वर्ग इंच पंद्रह पाउंड के बराबर दवाव डालता है। उन्हें यह बात कुछ जँची नहीं कि हवा का दवाव इतना अधिक हो सकता है। यदि यह बात ठीक हो तो फिर मनुष्य शरीर पर हवा का सारा दवाव लगभग १६ टन के बराबर होगा। इतने अधिक दवाव से तो मानवी शरीर कभी का चकनाचूर हो जाना चाहिये, पर ऐसा नहीं होता। इसका कारण है। यह दवाव मनुष्य के शरीर पर सब ओर से पड़ता है। हमारे शरीर के अंदर भी हवा होती है यह बाहर की ओर दवाव डालती है और बाहर की हवा अंदर की ओर। फलतः दोनों का दवाव मिल कर नहीं के बराबर हो जाता है। जब हम एकाएक पहाड़ पर पहुँचते हैं तो हमें हवा का दवाव कुछ मालूम होता है। बाहर की हवा का दवाव कम होता है और भीतर की हवा का अधिक। इससे खून बाहर निकलने लगता है।

हवा के दवाव का हमारे लिये एक खास उपयोग है। हमारी जांघ की हड्डी नितंब की हड्डी से जुड़ी हुई होती है। इन पर कार्टिलेज की एक पतली परत चढ़ी हुई होती है और बीच का स्थान एक चिकने द्रव से भरा हुआ होता है। दोनों हड्डियों के जोड़ में हवा नहीं होती। बाहर की हवा दोनों सतहों को आपस में दवाये रखती है। यदि हवा का दवाव न होता तो जांघ की हड्डी का इधर उधर हो जाना रोज की एक दुर्घटना

होती।

रॉबर्ट बोयल ने यह बतलाया कि दबाये जाने पर हवा का दबाव बढ़ जाता है। यदि हवा का आयतन पहले से आधा हो जाय तो उसका दबाव दूना हो जाता है। सामान्य अवस्था में हवा का दबाव १५ पौंड प्रति वर्ग इंच होता है। दबाये जाने पर यदि हवा का आयतन पहले से आधा हो जाता है तो उसका दबाव तीस पौंड प्रति वर्ग इंच हो जायगा। दबाव आयतन का उत्क्रमानुपाती है।

वायुदाबमापक यंत्र एक वड़ी चीज हो गई है। मौसम के परिवर्तन को मालूम करने के लिये यह बड़ा अच्छा साधन है। जब तूफान आने वाला होता है तो पारदस्तंभ तेजी से गिरने लगता है। हरेक जहाज में वायुदाबमापक यंत्र का होना जरूरी है। ऐसे वायुदाबमापक यंत्र भी होते हैं जिनमें पारे या और किसी द्रव पदार्थ का उपयोग नहीं किया जाता। ऐसे यंत्र निर्द्रव वायुदाबमापक यंत्र कहलाते हैं। इसमें एक मंद गोलाकार धातु का बना बक्स होता है। इसके ऊपर का भाग झुर्रीदार और लचीला होता है। बक्स में से हवा निकाल दी जाती है। ऊपर का भाग एक मजबूत चौड़ी कमानी से संबद्ध रहता है जिससे यह दबाव पड़ने पर पिचकने नहीं पाता। फिर भी यदि हवा का दबाव अधिक होता है तो यह कुछ नीचे बैठ जाता है और यदि कम हो जाता है तो कुछ ऊपर उठ जाता है। प्रत्येक अवस्था में कमानी

पर भी यह असर पड़ता है। ये चढ़ाव उतार उत्तोलकों द्वारा बढ़ाये जाकर एक महीन साकल की सहायता से निर्देशक (Pointer) तक पहुँचाये जाते हैं। यह निर्देशक यंत्र पर लगे डायल पर घूमता है।

जर्मन विद्वान् ओटो फोन ग्यूरिके ने शून्य स्थान पाने के लिये कई प्रयत्न किये। उसने अंत में दो आधे गोले बनाये। पंप की सहायता से उनमें से हवा निकाल कर दोनों गोले परस्पर जोड़ दिये गये। ये गोले एक दूसरे से इस तरह चिपक गये कि उन्हें अलग करने के लिये सोलह घोड़ों की आवश्यकता हुई। यह प्रयोग जर्मन सम्राट् फर्डिनेंड तृतीय और उसकी सरकार के सामने किया गया था। इससे यह अंदाज लगाया जासकता है कि हवा का दवाव कितना अधिक होता है। उसने यह भी सिद्ध किया कि आवाज शून्य में से नहीं आ जा सकती। उसने वर्त्तन में एक घड़ी को रक्खा और उसमें से पंप द्वारा हवा निकालना आरम्भ किया। ज्यों ज्यों हवा निकलती गई घड़ी की आवाज मंद पड़ती गई। अंत मे उसका सुनाई देना बिलकुल बंद हो गया। उसने यहाँ तक कहा कि यदि मनुष्य बड़े भारी शून्य स्थान में साँस निकाले तो यह उसकी अंतिम श्वास होगी।

वायु पंप के आविष्कार से लोगों पर काफी प्रभाव पड़ा। उन्हों ने पहले पहल इस बात का अनुभव किया कि वे हवा के महासागर के तल पर रहते हैं। और यदि

होती ।

रोबर्ट बोयल ने यह बतलाया कि दबाये जाने पर हवा का दबाव बढ़ जाता है । यदि हवा का आयतन पहले से आधा हो जाय तो उसका दबाव दूना हो जाता है । सामान्य अवस्था में हवा का दबाव १५ पाउंड प्रति वर्ग इंच होता है । दबाये जाने पर यदि हवा का आयतन पहले से आधा हो जाता है तो उसका दबाव तीस पाउंड प्रति वर्ग इंच हो जायगा । दबाव आयतन का उत्क्रमानुपाती है ।

वायुदाबमापक यंत्र एक घरेलू चीज हो गई है । मौसम के परिवर्तन को मालूम करने के लिये यह बड़ा अच्छा साधन है । जब तूफान आने वाला होता है तो पारदस्तंभ तेजी से गिरने लगता है । हरेक जहाज में वायुदाबमापक यंत्र का होना जरूरी है । ऐसे वायुदाब मापक यंत्र भी होते हैं जिनमें पारे या और किसी द्रव पदार्थ का उपयोग नहीं किया जाता । ऐसे यंत्र निर्द्रव वायुदाबमापक यंत्र कहलाते हैं । इसमें एक तंग गोलाकार धातु का बना बक्स होता है । इसके ऊपर का भाग झुर्रीदार और लचीला होता है । बक्स में से हवा निकाल दी जाती है । ऊपर का भाग एक मजबूत चौड़ी कमानी से सबद्ध रहता है जिससे वह दबाव पड़ने पर पिचक नहीं पाता । फिर भी यदि हवा का दबाव अधिक होता है तो वह कुछ नीचे बैठ जाता है और यदि कम हो जाता है तो कुछ ऊपर उठ आता है । प्रत्येक अवस्था में कमानी

है कि वह जितनी हवा हटाता है ~सका वजन बैलून के कुल वजन से अधिक होता है।

मारी हवा हटाली जाय तो यह विश्व और ही कुछ हो जायगा । ऐसा होने पर कोई प्राणि जीवित नहीं रह सकेगा ।

ज्यों ज्यों हम ऊँचाई पर जाते हैं हवा का दबाव घटता जाता है । अत किसी वस्तु पर वायु का ऊपर की ओर का दबाव नीचे की ओर के दबाव से कुछ अधिक होता है। दूसरे शब्दों में जैसा द्रव पदार्थों में होता है हर पदार्थों पर जो हवा से घिरे हुए हैं, उत्थापक बल का प्रभाव पडता है । यह उत्थापक बल उस हवा के वजन के बराबर होता है, जो हटाई गई है । यदि कोई पदार्थ शून्य स्थान में तौला जाता है तो उसका वजन हवा मे तौले गये वजन से अधिक होता है। यदि यह अंतर बहुत कम हो तो कोई खास बात होती है पर कभी कभी यह काफी अधिक होता है । ऐसा होने पर वह पदार्थ ऊँचा उठता है। बैलून के तीन रबर मय वस्त्रों का बना हुआ होता है । यह काफी हलका होता है । बैलून अधिकतर गोलाकार होते हैं । इसके नीचे यात्रियों के बैठने और यंत्रों को रखने के लिये एक टोकरी लटका दी जाती है । बैलून बहुधा हीलियम या उदजन गैस से भरा जाता है। उदजन गैस के ज्वलनशील होने के कारण बैलून विहार में आग का खतरा रहता है । आग से बचने के लिये हीलियम गैस का उपयोग किया जाता है । यह उदजन से कुछ भारी और साथ ही मँहगी भी होती है । बैलून इस लिये उड़ता

है कि वह जितनी हवा हटाता है उसका वजन बैलून
के कुल वजन से अधिक होता है।

ताप की उपयोगिता

जाड़े में हमें घर के अन्दर और बाहर सर्वत्र अपने का गर्म रखना पड़ता है। हमारे शरीर का ताप सुरक्षित रहे इसलिये हम ऊनी वस्त्रों का व्यवहार करते हैं। गर्मी के दिनों में कभी कभी गर्मी असह्य हो जाती है जिससे हमें अपने शरीर को शीतलता पहुंचाने के लिये अनेक यत्न करने पड़ते हैं। गर्मी का उपयोग हम इंजिनों में करते हैं। हमारा शरीर भी एक तरह से इंजिन के समान ही है। इंजिन को जैसे कोयले और पानी की जरूरत पड़ती है वैसे ही हमारे शरीर को भोजन और पानी की आवश्यकता होती है। मोटरकार यन्त्र का परिचालन भी ताप से ही होता है। इस तरह से आप देखेंगे कि हमारे दैनिक जीवन में ताप की उपयोगिता कितनी अधिक है।

यह ताप हमें कहाँ से मिलता है? ताप क

मिलने का सबसे अधिक महत्व पूर्ण साधन सूर्य है। सूर्य की रश्मियाँ सीधी पृथ्वी की सतह पर पड़ने पर अधिक गर्म होती हैं। इसी लिये दुपहर को हमें अधिक गर्मी मालूम होती है और साय और प्रात ठंडक रहती है। इसके अतिरिक्त सूर्य से गर्मी में जाडे की अपेक्षा और भूमध्यरेखा पर ध्रुवा की अपेक्षा अधिक ताप मिलता है। पृथ्वी का भीतरी भाग गर्म है। गर्म झरने और ज्वालामुखी पर्वत इसके प्रमाण हैं। जमीन की खुदाई करने पर ज्यों ज्यों हम भीतर पहुचते हैं, तापक्रम बढ़ता जाता है। १०० फुट का गहराई पर १ अंश तापक्रम बढ़ जाता है। अपने घरों को गर्म रखने के लिये और इजनों को चलाने क लिये हम लकड़ी, कोयला, तैल या गैस जला कर ताप प्राप्त करते हैं। यह ताप अप्रत्यक्ष रूप से सूर्य से ही प्राप्त होता है। सूर्य से मिली हुई गर्मी पौधों में रासायनिक शक्ति के रूप में एकत्र रहती है। बिजली भी ताप का एक महत्वपूर्ण साधन है। इसका वर्णन अन्यत्र किया गया है।

घर्षण से भी ताप पैदा होता है। इससे यान्त्रिक शक्ति (Mechanical Energy) ताप में परिणत हो जाती है। प्राचीन काल में चकमक पत्थर को रगड़ने से आग पैदा की जाती थी। आजकल भी आग जलाने के लिये दियासलाई को किसी सतह पर रगड़ते हैं।

ताप को मालूम करने के लिये हमारे हाथ

नीय नहीं माने जा सकते। जाड़े में बाहर से आने पर कमरा गर्म मालूम होता है पर उसमें कुछ देर तक रहने पर वही कमरा बहुत ठंडा मालूम होने लगता है। इसके अतिरिक्त हाथ से यह मालूम नहीं किया जा सकता कि उस वस्तु कातापक्रम वास्तव में क्या है। खाली यह कह देना कि अमुक वस्तु गर्म और अमुक चीज शीतल है, काफी नहीं है। ताप को नापने के लिये तापमापक यंत्र (Thermometer) का उपयोग किया जाता है। ये काँच के बने हुए होते हैं और इनमें पारे का उपयोग किया जाता है। ये तीन तरह के होते हैं—शताशमेंड, फार्नहिट और रयूमर वैज्ञानिक कामा में शताशमेंड और घरेलू कामों मे फार्नहिट का उपयोग किया जाता है। तापमापक यंत्र में दो निशान कर लिये जाते हैं। नीचे का निशान उस स्थान पर बनाया जाता है जहाँ पर पारा रहने से पानी जम जाता है और दूसरा निशान वहाँ बनाया जाता है जहाँ पानी खौलने लगता है। इन दोनों की बीच की जगह ४३ भागों मे विभाजित करदी जाती है। शताशमेंड में पहला निशान ०° पर और दूसरा १००° पर बनाया जाता है। फार्नहिट में पहला निशान ३२° और दूसरा २१२° होता है। इन दोनों के बीच का स्थान १८० बराबर भागों में विभाजित कर दिया जाता है। रयूमर तापमापक यंत्र में क्थनाक (Boiling point) ८०° और हिमांक (Freezing point) ०° होता है। रयूमर तापमापक यंत्र का उपयोग जर्मनी में किया जाता है। इनके अलावा डाक्टरी ताप

मापक यंत्र भी होता है जो जीभ या बगल में रखे जाने पर मानवी देह का तापक्रम बतलाता है। इसमें पारे के बल्ब के कुछ ऊपर पारे के धागे में एक संकिरण (Constriction) होता है। इससे पारा वापस नहीं लौटता। रोगी के मुंह मे निकाल कर तापक्रम पढ़ लिया जाता है और बाद में झटका देने से पारा वापस बल्ब में लौट जाता है। एक स्वस्थ मनुष्य का तापक्रम ९७.८ फार्नेहिट होता है। तापक्रम के १०५° से अधिक व ९५ से कम होने पर चिंता जनक अवस्था समझी जानी चाहिये।

ऐसे तापमापक यंत्रों से किसी जगह का तापक्रम मालुम करने के लिए हमें बार बार यंत्र को देखना पड़ता है। किसी स्थान के चौबीस घंटों में उच्चतम और निम्नतम तापक्रम मालुम करने के लिये एक खास तरह का तापमापक यंत्र होता है। इस यंत्र में बल्ब के ऊपर एक संकिरण लगा रहता है। यह पारे को फैलने के वक्त तो ऊपर जाने देता है पर जब पारा ठंडा होने पर सिकुड़ता है तो यह उसके धागे को तोड़ देता है। इस तरह से पारा उसी तापक्रम पर बना रहता है। इसे बाद में सीधा रखकर झटका देने से यह पूर्ववत् हो जाता है। निम्नतम तापक्रम मालूम करने के लिये मद्यतापमापक यंत्र का उपयोग किया जाता है। इसमें एक छोटा सा सूचक यंत्र (Index) होता है। जब मद्य सिकुड़ता है तो वह सूचक को पीछे ढकेलता है पर जब यह फैलता है तो सूचक को वहीं छोड़ देता है। इसे उलटा करके फिर पहले की तरह

कर लिया जाता है।

प्रसार (Expansion) —किसी चीज को गर्म करने पर यह फैलती है। इसी लिये रेल के जोड़ के बीच में थोड़ी सी जगह छोड़ दी जाती है। गर्मी में लोहे के फैलने पर यह जगह घिर जाती है। धुरी पर पहिये गर्म करके चढ़ाए जाते हैं जिससे ठंडे होने पर सिकुड़ कर ये धुरी पर ठीक बैठ जाते हैं। विभिन्न धातुओं का अलग अलग प्रसार होता है। जस्ता सबसे अधिक और परतीय (Platinum) सबसे कम फैलता है। दो धातुओं का संयुक्त छड़ गर्म किये जाने पर मुड़ जाता है क्योंकि दोनों धातुओं का प्रसार अलग अलग होता है।

काँच गर्म किये जाने पर फैलता है। यह ताप का कुचालक (Bad conductor) है। गर्म काँच की बोतल पर ठंडा पानी डालने पर उस स्थान का काँच सिकुड़ता है। फल यह होता है कि बोतल टूट जाती है। स्फटिक का प्रसार कम होने के कारण एकदम गर्म होने पर भी यह ठंडे पानी में डाला जा सकता है। पाइरेक्स काँच का प्रसार भी बहुत कम होता है। इसीलिये रासायनिक प्रयोगों के लिये पाइरेक्स काच के बने बर्तन काम में लिये जाते हैं। सारे द्रव और गैसीय पदार्थ गर्म किये जाने पर फैलते हैं। पानी गर्म होने पर वाहक धाराएँ (Convect ion Current) पैदा करता है। गैसों का प्रसार ठोस और द्रव पदार्थों की अपेक्षा ज्यादा होता है। प्रत्येक गैस गर्म किये जाने पर ०° पर अपने आयतन का १/२७३ भाग

प्रतिअंश बढ़ती है।

पानी का एक खास गुण है। वह ०° से गर्म किये जाने पर ४ तक सिकुड़ता है और उसके बाद दूसरे द्रव पदार्थों की तरह फैलता है। दूसरे शब्दों में पानी ४ शताशमेंड पर सबसे अधिक घना होता है। ४° से नीचे ठंडा करने पर पानी फैलता है। पानी का यह गुण झीलों, नदियों और समुद्रों में रहने वाले जीवधारियों के लिए बड़े काम का है। पानी की सतह ठंडी होने पर भारी हो जाती है। भारी पानी नीचे चला जाता है और हलका पानी ऊपर उठ आता है। यह तब तक होता रहता है जब तक सतह पर के पानी का तापक्रम ४° तक न पहुंच जाय। ४ तक पहुँचने के बाद और ठंडा किये जाने पर पानी फैलता है अर्थात् उसका घनत्व कम हो जाता है और वह नीचे न जाकर सतह पर ही बना रहता है। इस तरह से सतह पर का पानी ता हिमांक तक पहुँच कर बर्फ बन जाता है पर उसके नीचे का पानी का तापक्रम ४° शताशमेंड से कम नहीं होने पाता।

ताप संचालन (Tran mission of Heat)— ताप-संचालन की तीन विधियाँ हैं—चालन, वाहन, और विकिरण। किसी वस्तु के एक किनारे को गर्म करने पर दूसरे किनारे तक ताप पहुँच जाने को ताप का चालन (Conduction) कहते हैं। वाहन विधि (Convection) में ताप ऊपर से नीचे पहुँचने के लिये उस पदार्थ के परमाणु

चलते रहते हैं। पानी को गर्म करने पर गर्म पानी ऊपर चला जाता है और ठंडा पानी नीचे आजाता है। रोशनदाना में भी वाहन होता है। साम के साथ निकली हुई हवा गर्म होने के कारण ऊपर उठती है और उसका स्थान ताजी ठंडी हवा ले लेती है। एक गर्म चीज को कमरे में लटकाने और उससे कुछ दूरी पर खड़े होने पर गर्मी मालूम देती है। बीच की हवा बिलकुल गर्म नहीं होती। ताप के सचालन की यह विधि विकिरण (Radiation) कहलाता है।

पानी ताप का कुचालक है। एक काँच की नली म नीचे बर्फ रख कर पानी भरिये और उसे ऊपर स गर्म कीजिये। पानी खौलने लगेगा पर नीचे रखी हुई बर्फ वैसी की वैसी पड़ी रहेगी। लकड़ी भी ताप का कुचालक है। उसे एक ओर से जलाने पर और दूसरी तरफ हाथ लगाने मे यह गर्म नहीं मालूम होती। इसी लिये धातु की बनी चीजों मे लकड़ी का हत्था लगाया जाता है। थर्मास फ्लास्क ताप के कुचालक होने का एक अच्छा उदाहरण है। इसम काँच की दुहरी दीवारें होती हैं। दो भीतरी भागों पर पारा लगा रहता है। दीवारों के बीच में स हवा निकाल कर उसे द्रवण मुद्रित (Hermatically sealed) कर दिया जाता है। शून्य स्थान म ताप इधर उधर नहीं होता। विकिरण के कारण ताप शून्य में भी चलता है पर पारे लगे काँच की सतह पर पहुचन पर फिर परावर्तित हो जाता है। इस तरह स थर्मास फ्लास्क में ताप भीतर से बाहर बहुत कम आता है। इसमें रखी हुई

चीजें जैसी की तैसी बनी रहती है। वे ठंडी या गर्म नहीं होती।

बर्फ का ताप क्रम ०° होता है। वह गर्म किये जाने पर पिघलने लगती है। जब तक वह सारी पिघल नहीं जाती उसका तापक्रम वही बना रहता है। इसी तरह पानी को गर्म करने पर वह खौलने लगता है। जब तक सारा पानी भाप बन कर उड़ नहीं जाता तब तक उसका तापक्रम १००° शताशमेंड पर बना रहता है। इस तरह बर्फ के पिघलने और पानी के भाप बनने में जो ताप खर्च होता है वह गुप्त ताप (Latent Heat) कहलाता है। इस ताप का उपयोग पदार्थ के अणुओं को दूर दूर करने में होता है।

पानी को धूप में रख छोड़ने पर वह धीरे धीरे भाप बन कर उड़ जाता है। इसे वाष्पीभवन (Evaporation) कहते हैं। पानी भाप बन कर वायुमडल में मिल जाता है और हवा को आर्द्र बना देता है। गर्म किये जाने पर पानी जल्दी वाष्प में परिणत होने लगता है। काँच के गिलास में ठंढा पानी भर कर रखने से उसके बाहर की ओर पानी की बूंदें बन जाती हैं। यह हवा के अधिक आर्द्र होने के कारण होता है। ऐसी हवा भाफ से सतृप्त (Saturated) होती है। इस हवा के ठंडी होने पर उसम वर्त्तमान भाप का कुछ भाग द्रवीभूत हो जाता है। फलत जल की बहुत सी महीन बूंदें बन जाती हैं। ये जमीन के पास

होने पर कुहरा और कुछ ऊँचाई पर होने पर बादल बनाती हैं। बहुत से पदार्थ ऐसे होते हैं जो हवा की आर्द्रता को खींच लेते हैं। इनमें नमक चूना, गंधक का तेजाब, फास्फरस पंचोषिद (Phosphorus Pentoxide) आदि मुख्य हैं। कपूर जैसे कई पदार्थ बिना द्रवीभूत हुए वाष्प में परिणत हो जाते हैं।

बिलकुल शुष्क या बहुत अधिक आर्द्र हवा स्वास्थ्य के लिये उपयोगी नहीं होती। जहाँ के वायुमंडल में नमी की मात्रा अधिक होती है वहाँ वर्षा काफी होती है। रात्रि के समय जब आकाश साफ और हवा स्थिर होती है, जमीन की सतह पर से गर्मी का विकिरण आसानी से होता है और प्रात काल जमीन के पर के पदार्थों पर ओसकण जम जाते हैं। जमीन के आस पास की हवा इतनी अधिक ठंडी हो जाती है कि उसमें वर्त्तमान नमी उसे संतृप्त बनाने के लिये बहुत अधिक होती है। ठंडे सतह पर यह अधिक आर्द्रता द्रवीभूत हो जाती है। जिस तापक्रम पर द्रवीभवन होता है वह ओसांक (Dew Point) कहलाता है।

लगभग दो सौ वर्ष पहले तक इस भौतिक संसार का सारा कार्य मनुष्य एवं दूसरे प्राणियों की शक्ति से होता रहा है। कभी कभी पनचक्कियों से भी काम लिया जाता था। पर सब से पहला सफल भाप का इंजिन सन १७०५ में टामस न्यूकामेन नामक एक अंग्रेज लुहार ने बनाया था। यह कोयले की खान से पानी निकालने के काम में लिया

जाता था। यह इंजिन बहुत ही बेढंगा सा था और काम को देखते हुए ईंधन का खर्च बहुत ही अधिक होता था। फिर भी खान में काम करने वालों के लिये यह एक वरदान स्वरूप था। जेम्स वाट ने इसे नया रूप दिया। आज कल जिस तरह के भाप के इंजिन बनते हैं उनका आधार रूप जेम्स वाट का बनाया हुआ भाप का इंजिन ही है।

इसके आविष्कार ने सभ्य ससार के जीवन के ढंग को ही बदल दिया। सामूहिक रूप से पदार्थों का तैयार किया जाना इसी ने सभव बनाया। कारखाने स्थापित हुए। रेल और जहाजों के बनने से ससार के विभिन्न देशों के निवासी पहले की अपेक्षा एक दूसरे के अधिक निकट हो गये। इससे आवागमन का साधन सुलभ और आसान होगया। एक-दो नुकसान भी हुए। कारखानों के खुलने और यत्रों का उपयोग किये जाने से स्वतन्त्र कलाकार बेकाम हो गये आजकल ढाका की मलमल कहाँ मिलती है? श्रमिक समस्या भी हमारे सामने भयकर रूप से आ खडी हुई है। मजदूरों का शोषण और फलस्वरूप कारखाना म हडतालों का होना एक आम बात हो गई है।

भाप के यत्रों में चाहे रेल के इजन हों चाहे समुद्रों में चलने वाले जहाज हों या चाहे बिजली घर क इंजिन हों भाप बोयलर में बनती है, इंजिन के चलाने में काम आती है और हवा में या शीतक (Condenser) में निकाल दी जाती है। बोयलर के भाप पैदा करने का परिमाण काफी होना चाहिये। बोयलर आग नलिकाओं का बना हुआ

होता है। इन नलिकाओं का व्यास लगभग ३ या ४ इंच होता है। इनमें से होकर आग और धुआँ निकलता है। नलिकाओं के बाहर की जगह पानी और भाप से भरा रहती है। बिजली घरों के बोयलरों में जल-नलिकाएँ होती हैं। इन नलियों में पानी भरा रहता है और बाहर आग व धुंआ होता है। आधुनिक ढंग के बोयलरों में कोयला अपने आप झोंक दिया जाता है। बोयलरों की क्षमता लगभग ६०–७५ प्रति शत होती है। चिमनी से धुंए का निकलना इस बात का प्रमाण है कि इतने सारे ईंधन का उपयोग न हो सका और वह व्यर्थ ही नष्ट हो रहा है। आस पास की हवा का खराब होना तो निश्चित ही है। कई इंजिनों में भाप बाहर हवा में निकाल दी जाती है और दूसरों में वह शीतक में पहुंचाई जाती है। यहाँ पर वह या तो ठंड पानी की धार में या एक बड़े लोहे के बर्तन में जो ठंड पानी की नलिकाओं से भरा रहता है द्रवीभूत की जाती है। इंजिन की क्षमता लगभग १८·५ प्रतिशत होती है। कोयले में जितनी कार्य शक्ति होती है उसका लगभग पाचवाँ भाग इंजिन को चलाने के काम में आता है। बाकी शक्ति का इधर उधर ह्रास हो जाता है।

मोटर कार में भाप का इंजिन काम नहीं करता। उसमें गैस या तेल के इंजिन का उपयोग किया जाता है। भाप के इंजिन में बोयलर में ईंधन जलाया जाता है और उससे जो भाप बनती है वह नलियों में से इंजिन में ल

जाई जाती है। इसके विपरीत तैल या गैस के इञ्जिन में इञ्जिन के सिलेंडर में ही गैस या तैल जलाई जाती है और जो ताप पैदा होता है वह मोटर को चलाता है। पहले जो इस तरह के इञ्जिन बने उनमें गैस का ईंधन के रूप में उपयोग किया गया था। आज कल द्रव पदार्थ का उपयोग किया जाता है। इनमे पेट्रोल मुख्य है।

कारब्यूरेटर मे पेट्रोल स्फोटक मिश्रण बनाने के लिये हवा क साथ धार के रूप में मिलाया जाता है। सारे गैस इञ्जिन सिलेंडर में होने वाले स्फोटन से चलते हैं। स्फोटन हाने से पिस्टन ढकेला जाता है। पिस्टन को यह गति सनद्ध छड़ (Connecting Rod) द्वारा क्रेंक के घुराग्ड (Shaft) तक पहुँचाई जाती है। गैस और हवा का मिश्रण सिलेंडर के बंद किनारे तक पहुचाया जाता है और वहाँ वह आग पकड़ता है। एक दम भड़क उठने से तापक्रम काफी ऊँचा हो जाता है और परिणाम यह होता है कि दबाव में असाधारण वद्धि हो जाती है। इंजिन में स्फोटन हो जाने के बाद यह जरूरी है कि बने हुए पदार्थ बाहर निकाल दिये जायँ और गैस और हवा का नया मिश्रण उनका स्थान ले जिससे दूसरा स्फोटन हो सके। इसके लिये दो तरह के इंजिन होते हैं। एक में एक पूरे चक्कर यानी दो घुमाव में एक बार स्फोटन होता है और दूसरी तरह के इंजिन में दो चक्कर या दो घुमाव में एक स्फोटन होता है। मोटर गाड़ियों में अधिकतर चार घुमाव वाले इंजिन होते हैं। इनमें दो छिद्र (Valve) होते हैं। एक वाल्व

में से होकर कारब्यूरेटर में से हवा और गैस का मिश्रण आता है और दूसरे वाल्व में से होकर स्पार्क के बाद पैदा होने वाली गैसें बाहर निकाली जाती हैं। मोटर कार में ४, ६ ८, ९ या १२ सिलेंडर तक होते हैं। इनमें से कोई न कोई हर वक्त गाडी को चलाने के लिये शक्ति देता रहता है। गैस इंजिनों का उपयोग ट्रैक्टरों व वायुयानों में किया जाता है।

आजकल मोटर गाडियों का प्रचार दिनों दिन बढता जा रहा है। समय की गति को देखते हुये यह वांछनीय भी है। कार्य में व्यस्त मनुष्यों के लिये तो यह एक ईश्वरीय देन सी है। इससे समय की काफी बचत हो जाती है। इसमें सवार होकर हम थोड़े ही समय में काफी दूर की यात्रा कर सकते हैं। मोटर गाड़ियों को सस्ता बनाने का श्रेय अमेरिकन धनाढ्य फोर्ड का है। रोल्सरायस मोटर गाड़ी बहुत ही आरामदायक और मनोरम होती है। मोटर कार धनाढ्य लोगों के लिए है। सामान्य पुरुषों के लिये लारी बड़े काम की चीज है। लॉरी चलने से रेलों को अपना किराया कम घटा देना पड़ा है। रेल और लारियों की प्रतिद्वन्दिता होने से गरीबों को तो लाभ ही हुआ है।
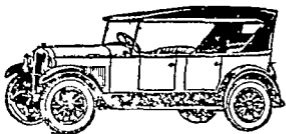
मोटरकार

ग्रामोफोन

वायुदाबमापक यन्त्र

ध्वनि विज्ञान और उसके आचार्य एडिसन

जब किसी चीज में कंपन होता है तो उस चीज से आवाज पैदा होती है। किसी चीज के गिरने या घंटी या सीटी बजाने से उसमें कंपन पैदा होता है और इसीलिये ऐसा होने पर आवाज सुनाई देती है। अन्यत्र कहा जा चुका है कि शून्य में आवाज नहीं होती। ध्वनि के चालन के लिये किसी माध्यम का होना जरूरी है। हवा के अतिरिक्त ठोस, द्रव और गैसीय पदार्थ ध्वनि के अच्छे माध्यम हैं। साधारण स्थान में हमें यह मालूम नहीं होता कि ध्वनि के कान तक पहुँचने के लिये कुछ समय की जरूरत पड़ती है। एक बड़े हॉल में या बाहर खुले मैदान में यह बहुधा देखा गया है कि ध्वनि सुनाई देने के कुछ समय पश्चात उसकी प्रतिध्वनि सुनाई देती है। इससे यह मालूम होता है कि ध्वनि को परावर्त्तक तल (Reflecting surface) तक पहुँच कर वापस आने

में कुछ समय लगता है। इस तरह बिजली के चमकने के कुछ देर बाद बादलों की गड़गड़ाहट सुनाई देती है। तोप छूटने पर उसी वक्त धुआँ उठता हुआ दिखाई दे जाता है पर आवाज बाद में सुनाई पड़ती है। इससे यह नतीजा निकलता है कि ध्वनि प्रकाश की अपेक्षा कम तेजी से चलती है। हवा में ध्वनि की गति ३३१ मीटर प्रति सेकेंड है। पानी में इससे लगभग साढ़े चार गुना और इस्पात में पंद्रह गुना अधिक होती है।

जब ध्वनि हमारे कान के पर्दे तक पहुँचती है तब हमें आवाज सुनाई देती है। कान के पर्दे से ध्वनि मस्तिष्क में पहुँचती है। जिस वस्तु से आवाज पैदा होती है वह वायुमंडल में कंपन पैदा करती है। यह कंपन ठीक वैसा ही होता है जैसे पानी में कंकड़ फेंकने से लहरें पैदा होती हैं। यह कंपन वायु में चलता है और जब कान तक पहुँचता है तो आवाज सुनाई देती है। जब घंटी बजती है तो उसकी आवाज सब ओर सुनाई देती है। घंटी से हम ज्यों ज्यों दूर होते जायँगे ध्वनि अधिक जगह में फैलती जायगी। फलस्वरूप ध्वनि की तीव्रता कम होती जायगी। दूरी के दुगुनी हो जाने पर ध्वनि की तीव्रता एक चौथाई ही रह जाती है।

महराबदार छत वाले कमरे में एक किनारे पर की गई कानाफूसी को दूर बैठा हुआ आदमी सुन सकता है। ध्वनि छत से टकराकर सुनने वाले के कान तक

पहुँच जाती है ।

फोनोग्राफ—फोनोग्राफ के आविष्कारक श्रीयुत टॉमस अलवा एडिसन थे । आपका देहांत हाल में ही हुआ है । यह एक विचित्र सी बात है कि ग्रामोफोन के आविष्कारक को ऊँचा सुनाई दे । आपका जन्म सन् १८४७ में अमेरिका के मिलन नगर में हुआ । इन्हों ने बहुत से यंत्रों का आविष्कार किया । इनमें ग्रामोफोन मुख्य है । इनका विज्ञान प्रेम प्रशंसनीय था । ये रेल में समाचार पत्र बेचने का काम करते थे । पर वे इससे सतुष्ट न थे अत उन्हों ने अपना समाचार पत्र अलग निकालना शुरू किया । इसके अलावा रेल के डिब्बे में उन्होंने अपनी एक प्रयोग शाला भी स्थापित की । दुर्भाग्यवश एकबार वे जब प्रयोग कर रहे थे तो रेल के तख्ते पर विस्फोटक पदार्थ के गिर जाने से आग लग गई । आप बड़े घबराये । गार्ड ने आकर उन्हें डाँटा फटकारा और दो चार चपत भी जमा दिये । चपत का परिणाम यह हुआ कि आप सदा के लिये बहरे बन गये । प्रयोग शाला का अत होना तो निश्चित ही था । फिर भी उन्होंने धैर्य नहीं छोड़ा और यत्रों के आविष्कार कार्य में लगे रहे । एडिसन के न्यूयॉर्क चले जाने पर उन का धनाभाव दूर हुआ । एक कंपनी के मालिक ने उन्हें नौकरी दी । इसके बाद उन्हों ने कई यंत्रों का आविष्कार किया । उन आविष्कारों को कंपनी के मालिक ने पर्याप्त धन देकर खरीद लिया । टेलीफोन यंत्र के आविष्कारक ग्राहम बेल से आपकी दोस्ती थी । टेलीफोन के यंत्र को

सुई से ठीक करते समय एडिसन को कुछ शब्द सुनाई दिया। इससे आगे चल कर ग्रामोफोन का आविष्कार हुआ।

ग्रामोफोन यंत्र में सुई एक किनारे से दूसरे किनारे तक घूमती है। एक उत्तोलक इस गति को झिल्ली तक पहुँचाता है। यह झिल्ली अभ्रक की बनी हुई होती है। उत्तोलक ऊपर की ओर कुछ लंबा होता है इसलिये सुई के आस पास होने वाले कंपन उसी तरह पर बड़े रूप में झिल्ली के पास पैदा होते हैं। इन कंपनों से हवा में लहरें पैदा होती हैं। इनके कान के पर्दे से टकराने पर आवाज सुनाई देती है। आवाज की तेजी छोटी या लंबी सुई का प्रयोग करने से घटाई बढ़ाई जा सकती है।

जिस व्यक्ति की आवाज लेनी होती है वह व्यक्ति माइक्रोफोन पर बोलता है जैसा ब्रॉडकास्टिंग में होता है। इससे एक धड़कती हुई धारा पैदा होती है। यह धारा वेकुअम नलिकाओं में बढ़ाई जाती है। यह चुंबकत्व के कारण सुई को घुमाती है। यह सुई मोम पर लहरदार लकीरें खींचती है। बाद में मोम पर बिजली द्वारा ताना चढ़ा दिया जाता है। तांबे की चद्दर से ये लकीरें दबाव डाल कर चूड़ी पर स्थानांतरित कर ली जाती हैं। ये चूड़ियाँ अब ग्रामोफोन पर बजाई जा सकती हैं। इस तरह से हम चाहे जिस किसी की आवाज को ध्वनि बद्ध कर सकते हैं।

ध्वनि को दूर तक पहुँचाने के लिये लाउड स्पीकर का

उपयोग किया जाता है। जहाँ बड़ी बड़ी सभाओं के अधिवेशन होते हैं अर्थात् जिन अधिवेशनों म श्रोताओं की सख्या हजारों तक पहुँचती है वहा वक्ताओं की आवाज सब तक पहुँचने में कठिनाई होती है। इसलिये ऐसे अधिवेशनों में आवश्यक स्थानों पर लाउड स्पीकर लगा दिये जाते हैं। इससे बहुत दूर बैठा हुआ आदमी भी मजे में वक्ता का भाषण सुन सकता है। कभी कभी इनमें गडबड होजाने से कुछ सुनाई नहीं देता। इस बात को दूर करने के लिये नये ढंग के लाउड स्पीकर बनाये गये हैं। इनमें एक बहुत ही शक्तिशाली विद्युत चुम्बक (Electro-magnet) होता है।

प्रकाश की ओर

प्रकाश के मिलने का सर्वोत्तम साधन सूर्य ही है। सूर्य के प्रकाश मे कई गुण हैं। यह स्वास्थ्य के लिये उपयोगी और रोग नाशक है। सूर्य का प्रकाश सात रंगों से बना है। ये सात रग लाल, नारंगी, पीला, हरा, आसमानी, नीला और बैंजनी रग हैं। इनके अतिरिक्त सूर्य की दो तरह की रश्मियां और होती हैं। उन्हें नीललोहितोत्तर (Ultra voilet) और उपरक्त (Infra Red) रश्मियां कहते हैं। नीललोहितोत्तर रश्मियाँ जो आँख से दिखाई नहीं पड़ती पौधों और प्राणियों के बड़ी ही उपयोगी होती हैं।

सूर्य का प्रकाश अभाग्यवश सब कहीं और सर्वदा नहीं मिलता। अंधेरे कमरों में, जमीन के भीतर बने हुए मकानों में और रात के समय सूर्य का प्रकाश दुर्लभ होता है। इसलिये हमें कृत्रिम प्रकाश का सहारा लेना पड़ता है। अनुभव से यह मालूम हुआ है कि कृत्रिम प्रकाश में

पदार्थों का वही रूप नहीं दिखाई पडता जैसा सूर्य के प्रकाश में दिखाई देता है। इसके अतिरिक्त शक्तिशाली विद्युद्दीपकों की चमक से अपनी आँखों को बचाना भी जरूरी हो जाता है। बिजली का प्रकाश महगा भी पड़ता है।

हमारी आँख एक बडी ही महत्वपूर्ण आलोकयंत्र है। इसकी दृष्टि शक्ति परिमित है। हम इससे बहुत ही छोटी और दूर की वस्तुऍं नहीं देख पाते। इसके अलावा कई लोगों की आँखों में कुछ कमी होती है। इसलिये हमें वस्तुओं को ठीक तरह से देखने के लिये आलोक यत्रा का सहारा लेना पडता है। किसी घटना के होने के बाद उसे देखना सभव बनाने के लिये भी यत्र बनाये जाचुके हैं। उनमें कैमेरा और गतिशील चित्रों को खींचने वाले यंत्र जिनका सिनेमा मे उपयोग किया जाता है मुख्य हैं। इन सब में ताल (Lens) का उपयोग किया जाता है और कइयो मे ताल के अतिरिक्त त्रिपार्श्वों (Prisms) का भी उपयोग होता है। इनमें प्रकाश रश्मियों का वर्तन (Refraction) होता है। जब प्रकाश एक माध्यम में से होकर दूसरे माध्यम में प्रवेश करता है तो उसका पथ कुछ मुड़ जाता है। इसे वर्तन कहते हैं। वर्तन के कारण ही पानी के भरे बर्तन में पेंसिल डालने से ऐसा मालूम होता है मानों वह पानी की सतह पर टूट गई हो। इसी के कारण बर्तन का तल ऊपर उठा हुआ

न दे तो उसमें पानी डालने से दिखाई दे जाता है। हलके माध्यम से घने माध्यम में टेढ़ पथ पर प्रवेश करने पर प्रकाश लंब की तरफ मुड़ जाता है और घने माध्यम से हलके माध्यम में जाने पर प्रकाश का पथ लंब से कुछ दूर हो जाता है।

प्रकाश की गति १,८६,००० प्रति सेकेंड है। सूर्य के प्रकाश को पृथ्वी तक आने में १६ मिनट और ३६ सेकेंड लगते हैं। प्रकाश शून्य में कुछ अधिक गतिशील होता है। पानी और काँच में प्रकाश की गति और भी कम हो जाती है।

जब प्रकाश हवा से पानी में पहुँचता है तो उसकी गति कम हो जाती है। गति की कमी प्रकाश के पथ को मोड़ देती है। यदि प्रकाश की रश्मियां पानी में ऊर्ध्वाधर रूप में होकर प्रवेश करती हैं तो उनका पथ वैसा का वैसा बना रहता है यद्यपि उनकी गति अवश्य ही कुछ मंद पड़ जाती है। गहरे माध्यम से हलके माध्यम में प्रवेश करने पर प्रकाश रश्मियों का पथ लंब से दूर हो जाता है। लंब और इस पथ से बनने वाला कोण वर्तन कोण (Angle of refracti n) कहलाता है। यह कोण कभी कभी इतना बढ़ जाता है कि रश्मियों का वर्तन न होकर पूरा परावर्तन (Reflection) हो जाता है। जिस कोण पर ऐसा होता है वह चरम कोण (Critical Angl) कहलाता है। पानी और हवा के लिये यह कोण ४९ है।

ताल दो तरह के होते हैं— उन्नतोदर Convex

और नतोदर (Concave)। उन्नतोदर ताल किनारों पर पतला और बीच में मोटा होता है और नतोदर ताल किनारे पर मोटा और मध्यभाग में पतला होता है। जब प्रकाश-रश्मि ताल में प्रवेश करती है तो उसका पथ मुड़ जाता है पर यदि यह ताल के ठीक बीच में से होकर प्रवेश करे तो उसका पथ सीधा रहता है। जहां पर रश्मियाँ मिलती हैं वह स्थान ताल की नाभि (Focus) कहलाती है। ताल और नाभि के बीच की दूरी नाभ्यंतर (Focal length) कहलाती है। नतोदर ताल में रश्मियाँ अपसृत होती हैं और ऐसा मालूम होता है मानो वे एक बिंदु से निकली हों। यह बिंदु काल्पनिक नाभि (Virtual focus) कहलाता है। ऐसे ताल का नाभ्यंतर ऋणात्मक (Negative) होता है।

कैमेरा एक तरह का प्रकाशगृह होता है। इसमें एक किनारे पर नतोदर ताल लगा हुआ होता है और यह इस तरह बना हुआ होता है कि किसी बाहरी पदार्थ का प्रतिबिंब प्लेट या फिल्म पर पड़ता है। चाँदी का एक यौगिक जो अधिकतर रजत ब्रमिद (Silver bromide) होता है काँच की प्लेट या सेल्यूलॉयड की बनी फिल्म पर चढ़ा रहता है। ताल में से होकर कुछ समय के लिये प्रकाश को भीतर जाने दिया जाता है। यह समय आवश्यकतानुसार सहस्रांश सेकेंड से लेकर कई मिनट तक होता है। प्लेट या फिल्म पर बना हुआ प्रतिबिंब तब तक नहीं दिखाई देता जब तक रासायनिक लवणों में डाल कर उसका विकाशन (Developing) न कर लिया जाय।

विकाशन के लिये लघी कारक (Reducing) यौगिकों—लौहस् ऑक्जेलेत (Ferrous Oxalate) पायरोगेलोल, लौहस् गधेत (Ferrous Sulphate) आदि— का प्रयोग किया जाता है। इन विकाशको का असर रजत श्वरुणिद के उन भागों पर होता है जिन पर प्रकाश की किया हो चुकी है। इस से उन भागों पर चाँदी के महीन कण निक्षिप्त हो जाते हैं। जहाँ पर प्रकाश सबसे अधिक पहुँचता है वहाँ यह निक्षेप सबसे अधिक होता है। यही कारण है कि प्लेट में पदार्थ के सफेद भाग काले और काले भाग सफेद दिखलाई पड़ते हैं। रजत अरुणिद का बाकी बचा हुआ हिस्सा सैंधव गंधो गधित (Sodium Hyposulphite) के घोल में प्लेट को डुबोकर अलग कर लिया जाता है और प्लेट धोकर सुखा दी जाती है। इस ऋणात्मक प्रतिबिंब की प्लेट या फिल्म को एक खास कागज पर जो प्लेट के समान ही तैयार किया जाता है रखकर चित्र तैयार करते हैं। इस कागज को उसी घोल में डुबो कर चित्र को स्थिर किया जाता है। यह धनात्मक (Positive) चित्र कहलाता है क्योंकि यह पदार्थ के समान होता है।

आँख केमेरा से बहुत कुछ मिलती है। इसमें सामने की ओर ताल और पीछे की तरफ कृष्ण पटल (Retina) होता है। कृष्ण पटल की सतह पर महीन नाड़ियाँ फैली रहती हैं और वे सब दृष्टि नाड़ी से मिलती हैं। किसी पदार्थ का प्रतिबिंब कृष्ण पटल पर पड़ने पर दृष्टि नाड़ी द्वारा मस्तिष्क को पहुँचाया जाता है। यदि

तड़ित् चालक छड़

कैमेरा
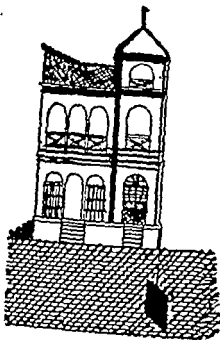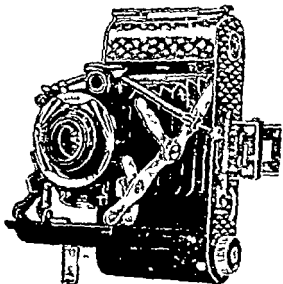
पदार्थ केमरे के वहुत नजदीक हो तो या तो प्लेट और ताल की दूरी बढा दी जानी चाहिये या फिर थोड़ी नाभि वाला ताल काम में लेना चाहिये । आँख मे लेंस और कृष्ण-पटल के वीच की दूरी वदलने का कोई साधन नहीं है । अत आवश्यकतानुसार लेंस का नाभ्यन्तर वदल जाता है । नाभ्यन्तर वदलने का काम मास पेशिया करती हैं। ये मास पेशियाँ लेंस के किनारों पर होती हैं । ये जव सिकुड़ती हैं तो लेंस के किनारे उभर आते हैं और उसका नाभ्यतर कम हो जाता है। इससे नजदीक के पदार्थ अच्छी तरह दिखाई पडते हैं । जव दूर के पदार्थ देखने होते हैं तो ये मास पेशिया शिथिल हो जाती हैं । फलत लेंस का नाभ्यंतर वढ जाता है। यह लेंस की सविधान क्षमता Power of accomodation) कहलाती है। ज्यों ज्यों मनुष्य की आयु ढलती जाती है यह क्षमता कम होती जाती है । यही कारण है कि वृद्ध मनुष्य नजदीक की चीज ठीक तरह से नहीं देख पाते। इसके अतिरिक्त उनकी आँखा का लेंस इतना फैल भी नहीं सक्ता कि वे वहुत दूर की चीजें भी ठीक तरह से देख सकें। अत उन्हें पढने के समय उन्नतोदर लेंस और घूमने फिरने के समय नतोदर लेंस वाला चश्मा लगाना चाहिये । पढते वक्त पुस्तक को आँख से लगभग १० इच की दूरी पर रखना चाहिये ।

निकट दृष्टि वाली आँख से दूर की चीजें धुंधली-सी दिखाई देती है। इसमें पदार्थ का प्रतिविंव कृष्ण पटल

के सामने बनता है। इस दोष को ठीक करने के लिये नतोदर लेंस का चश्मा लगाना चाहिये। दूर दृष्टि रोग में प्रतिबिंब कृष्ण पटल के पीछे बनता है। इसे ठीक करने के लिये उन्नतोदर लेंस का उपयोग किया जाता है।

स्वभावतः यह प्रश्न किया जा सकता है कि जब एक आँख से हम कोई चीज देख सकते हैं तो दो आँखें क्यों बनाई गई हैं। एक आँख का मनुष्य असुन्दर तो मालूम देता ही है इसके अतिरिक्त उसे किसी पदार्थ का एक तरफ का भाग अधिक और दूसरी तरफ का कम दिखाई देता है। दो आँखों के होने से कृष्ण पटल पर दो प्रतिबिंब बनते हैं। जब ये प्रतिबिंब मस्तिष्क में पहुँचते हैं तो वहाँ एक पूर्ण आकार का रूप बनता है। खाली एक आँख से घटा प्रतिबिंब बनेगा।

सिनेमा—सिनेमा के कैमेरा में एक लंबी फिल्म पर [illegible]चीर उतारी जाती है। यह एक सेकेंड में लगभग सोलह [illegible] खुलता और बंद होता है। जब शटर (Shutter) [illegible] होता है तब फिल्म घूमती है पर जब यह खुला रहता है तो फिल्म स्थिर रहती है। ये चित्र लगभग पौन इञ्च ऊँचे और एक इंच चौड़े होते हैं। एक रील लगभग १००० फुट लंबी होती है। चूंकि एक सेकेंड में एक फुट लंबी फिल्म घूमती है एक रील में लगभग १६००० चित्र होते हैं। प्रत्येक आगे आने वाला चित्र अपने पहले के चित्र से कुछ भिन्न होता है। इन ऋणात्मक चित्रों से दिखाई जाने के लिये धनात्मक चित्रों की कई रीलें तैयार की जा सकती

हैं। चित्र दर्शक लेटर्न की सहायता से पर्दे पर ये चित्र दिखलाये जाते हैं। इसमें बिजली का एक तेज लेम्प और दो समाहक लेंस होते हैं जो प्रकाश को फिल्म में ससृत करने का काम करते हैं। इसके अतिरिक्त आगे एक और लेंस होता है जो पर्दे पर वास्तविक प्रतिबिंब बनाता है। पर्दे पर चित्रों का प्रतिबिंब उसी वेग से पडता है जिस वेग से चित्र लिये जाते हैं। एक चित्र का दृष्टि-ज्ञान तब तक बना रहता है जब तक दूसरे चित्र का प्रतिबिंब पर्दे पर नहीं आजाता। इससे हमें पर्दे पर मनुष्य नाचते, कूदते, चलते, दौडते नजर आते हैं। पर वास्तव में हम स्थिर चित्रों को जल्दी जल्दी देखते है इसलिये ये गति-शील मालूम होते है। बोलते गाते सिनेमा में ध्वनि फिल्म पर ले ली जाती है। फिल्म पर लगी हुई इस ध्वनि रेखा को फिर आवाज में परिणत करने के लिये एक लेंप से प्रकाश फिल्म में से होकर प्रकाश विद्युत्-सेल की ओर भेजा जाता है। यह सेल चित्रदर्शक लेटर्न में लगी रहती है। इससे प्रकाश-विद्युत्-सेल में धारा चलने लगती है। यह धारा बढ़ाई जाती है और लाउड स्पीकर के चलाने के काम में ली जाती है। इस तरह से चित्रों के साथ आवाज सुनाई देती है।

सूक्ष्मदर्शक यन्त्र (Microscope) —इस यन्त्र में दो लेंस होते हैं। इनमें एक उपदृश्य (Objective) और दूसरा उपनेत्र (Eye piece) कहलाता है। जिस पदार्थ को देखना

होता है उसे उपदृश्य के नीचे लेंस की नाभि से कुछ दूरी पर रखा जाता है। इससे उसका उल्टा और बड़ा प्रतिबिंब बनता है। इसे उपनेत्र से देखने पर यह और भी बड़ा दिखाई देता है। यह प्रतिबिंब आँख से १० इंच की दूरी पर बनता है। सूक्ष्मदर्शक यंत्र से बहुत ही सूक्ष्म वस्तुएँ बड़ी दिखाई देती हैं। इस यंत्र की सहायता से प्राणी और पौधों के बारे में बहुत सा बहुमूल्य ज्ञान प्राप्त हुआ है।

दूरदर्शकयन्त्र (Telescope)— इस यंत्र से दूर की वस्तुएँ साफ साफ दिखाई देती हैं। ज्योतिष दूरबीन में दो लेंस होते हैं। ये दोनों उन्नतोदर लेंस होते हैं। इनमें से एक उपदृश्य और दूसरा उपनेत्र होता है। इससे जो प्रतिबिंब बनता है वह पदार्थ से कितना ही छोटा पर साफ होता है। इससे चीजें उलटी दिखाई देती हैं। चूँकि इस से हम ग्रहों व तारों को देखने का काम लेते हैं प्रतिबिंब के उलटे होने से कोई हानि नहीं होती और हमारा काम अच्छी तरह से चल जाता है। एक दूसरे प्रकार की दूरबीन में जो पृथ्वी पर की वस्तुएँ देखने के काम में ली जाती है एक और उन्नतोदर लेंस लगा रहता है। यह लेंस पहले के प्रतिबिंब को उलटता है और दूसरा वास्तविक प्रतिबिंब बनाता है। यह सीधा प्रतिबिंब उपनेत्र द्वारा बड़ा किया जाता है। फलस्वरूप एक बड़ा, सीधा और काल्पनिक प्रतिबिंब बनता है। ओपेरा ग्लास में उपनेत्र उन्नतोदर लेंस न होकर नतोदर लेंस

होता है। चूंकि उपनेत्र लेंस का लगभग वही नाभ्यंतर होता है जो देखने वाले की आँख के लेंस का होता है यह आँख के लेंस का निराकरण करता है और प्रतिबिंब सीधा कृष्ण पटल पर बनता है। इससे पदार्थ तीन चार गुने बड़े दिखाई देते हैं। गेलेलियो की दूरबीन इसी ढंग की थी।

रंग—जब प्रकाश रश्मि त्रिपार्श्व में से होकर बाहर निकलती है तो उसका दो बार वर्तन होता है—एक बार जब यह काँच में प्रवेश करती है और दूसरी बार जब यह काँच में से बाहर निकलती है। रश्मिपथ इस तरह से काफी मुड़ जाता है। ऊपर कहा जा चुका है कि जब प्रकाश टेढ़े पथ से काँच में प्रवेश करता है तो जो वर्तन होता है वह प्रकाश के वेग में कमी हो जाने के कारण होता है। प्रकाश-रश्मि का त्रिपार्श्व में न केवल दो बार वर्तन ही होता है प्रत्युत वह कई रंगों में फैल भी जाती है। ये सब रंग मिल कर वर्णपट बनाते हैं। सर आइजक न्यूटन ने बतलाया कि श्वेत प्रकाश कई रंगों की रश्मियों का मिश्रण है। वर्णपट में एक ओर लाल और दूसरी ओर बैंजनी रंग की धारियाँ होती हैं। सफेद रंग का सात रंगों में विभाजित होना प्रकाश विश्लेषण कहलाता है। जो प्रकाश सबसे कम वर्तित होता है वह लाल और जो सबसे ज्यादा वर्तित होता है वह बैंजनी रंग का होता है। प्रकाश का यह भौतिक गुण जिस पर रंग

निर्भर होता है तरंग दैर्घ्य (Wave length) कहलाता है। सफेद रंग का प्रकाश सूर्य से हमारे तक काल में उसी एक गति से चलता है पर जब उसका माध्यम बदल जाता है अर्थात् जब उसे काँच, पानी या दूसरे किसी पारदर्शक पदार्थ में से होकर जाना पड़ता है तो प्रकाश की विभिन्न रश्मियाँ अलग अलग गति से चलती हैं। लाल रंग का प्रकाश आसमानी रंग के प्रकाश से अपेक्षाकृत अधिक वेग से चलता है। यही कारण है कि आकाश के विभिन्न-भागों का वर्तन अलग अलग होता है और इस तरह से वर्ण विक्षेपण होता है। ये सात रंग क्रमशः लाल, नारंगी, पीला हरा, आसमानी, नीला और बैंजनी होते हैं। इन्हें याद रखने के लिये 'लानापीहआनीबैं' सूत्र उपयोगी सिद्ध होगा। इन्द्रधनुष के रंगों का क्रम भी यही होता है। वर्षा होने के बाद आकाश में जल की बूंदों के होने के कारण उन पर सूर्य की किरणें पड़ती हैं। जल बिन्दुओं में इन प्रकाश रश्मियों का वर्तन होता है। इस प्रकार सूर्य के प्रकाश का श्वेत रंग सात रंग की रश्मियों में विभाजित हो जाता है। यही हमारा इन्द्र धनुष है जिसे देख कर हमें बचपन में अचम्भा होती थी।

जब सूर्य का प्रकाश दुहरे उन्नतोदर लेंस में प्रवेश करता है तो उसका वर्तन होता है और यह नाभि पर संसृत होता है। इसके साथ साथ प्रकाश का विश्लेषण भी हो जाता है। लाल रंग के प्रकाश की नाभि

बैंजनी रंग के प्रकाश की नाभि से काफी दूर होती है। इससे किसी पदार्थ का प्रतिबिंब ठीक नहीं आता। इस दोष को दूर करने के लिये यौगिक लेंस बनाये जाते हैं। क्राउन काँच का उन्नतोदर लेंस चकमक काँच के बने हुए नतोदर लेंस से चिपका दिया जाता है। नतोदर लेंस कुछ कम शक्ति का होता है इसलिये दोनों मिल कर उन्नतोदर लेंस ही बनाते हैं। इससे सारे रंग एक स्थान पर केंद्रित हो जाते हैं। इस तरह का लेंस निर्वर्णक लेंस (Achromatic lens) कहलाता है।

लाल रंग का तरंग दैर्घ्य सब से लंबा और बैंजनी रंग के प्रकाश का तरंग दैर्घ्य सबसे कम होता है। त्रिपार्श्व में जब प्रकाश का विश्लेषण होता है तो लाल रंग के प्रकाश का वर्तन सबसे कम और बैंजनी रंग के प्रकाश का वर्तन सबसे अधिक होता है।

किसी पदार्थ का रंग उसे प्रदीप्त करने वाले और उसके द्वारा परावर्तित प्रकाश पर निर्भर करता है। कोई पदार्थ इसलिये सफेद मालूम होता है कि वह सब तरंग दैर्घ्यों को बराबर परावर्तित करता है। यदि कोई वस्त्र सूर्य के प्रकाश में हरा दिखाई देता है तो वह इसलिये हरा मालूम होता है कि वह उन्हीं रश्मियों को परावर्तित करता है जो हरे रंग का प्रकाश उत्पन्न करती हैं। यदि किसी सफेद पदार्थ पर लाल रंग का प्रकाश पड़ता है तो वह पदार्थ लाल मालूम होता है और यदि हरे वस्त्र पर ऐसा प्रकाश पड़े जिसमें हरे रंग की किरणें

न हों तो यह कपड़ा काला दिखाई देगा। इसलिए पदार्थों का रंग प्रकाश पर पूर्णतः निर्भर होता है। जिस रंग का प्रकाश वह परावर्तित करेगा वह पदार्थ उसी रंग का दिखाई देगा। पारद वाष्पलैंप (Mercury Vapour Lamp) बहुत तेज लैंप होता है पर उससे लाल रंग की चीजें नहीं देखी जा सकतीं। कई रंग दो तीन तरह के तरंग दैर्घ्यों वाले प्रकाश के मिश्रण से बनते हैं। ऐसे रंग यौगिक रंग कहलाते हैं। पीला प्रकाश आसमानी प्रकाश से मिलने पर सफेद प्रकाश हो जाता है। ऐसे रंग के प्रकाश पूरक रंग कहलाते हैं। पीला रंग आसमानी रंग से मिलने पर हरा रंग बनाता है। रंग और प्रकाश में कुछ अंतर है। इसका कारण यह है कि पीला रंग पीले और हरे प्रकाश को परावर्तित करता है और आसमानी रंग आसमानी और हरे प्रकाश को। दोनों जब मिलते हैं तो आसमानी प्रकाश को पीला रंग और पीले प्रकाश को आसमानी रंग शोषण कर लेता है। अतः खाली हरा रंग परावर्तित होता है।

———

विद्युत् के चमत्कार

आजकल बिजली का उपयोग दिना दिन बढ रहा है। लगभग सभी काम बिजली की सहायता से किये जाते हैं। रेल ट्राम आदि वाहनों में, भोजन बनाने, पानी गर्म करने, घंटी बजाने, पखा चलाने, प्रकाश करने, ऊपर से नीचे जाने और नीचे से ऊपर चढ़ने, दूर दर्शन, दूर श्रवण, टेलीफोन, तारवर्की आदि सब कामों में बिजली का उपयोग किया जाता है। सभ्य ससार को बिजली का अभाव अन्य वस्तुओं के अभाव की अपेक्षा सब से अधिक खलेगा।

विद्युत् क्या है?—तत्व अणुओं से मिलकर बने हैं और अणुओं का निर्माण परमाणुओं (Atoms) से हुआ है। ये परमाणु केंद्रक (Nucleus) और ऋणात्मक विद्युत् के मिलने से बनते हैं। ऋणात्मक विद्युत् के बहुत ही महीन कण होते हैं जिन्हें हम ऋणाणु (Electrons)

कहते हैं। इन ऋणाणुओं का वजन बहुत ही कम होता है इसलिये परमाणु का लगभग सारा वजन धनात्मक केंद्रक पर ही निर्भर करता है। साधारण अवस्था म परमाणु निरपेक्ष (Neutral) होता है अर्थात् विद्युत्कणों का ऋणात्मक आवेश (Charge) केंद्रक के धनात्मक आवेश के बराबर होता है। सब तत्वों के मौ परमाणु केंद्रक और ऋणाणुओं से बने हुए होते हैं। एक तत्व के परमाणु दूसरे तत्व के परमाणुओं से इसलिये विभिन्न होते हैं कि एक में दूसरे की अपेक्षा ऋणाणुओं की संख्या और केंद्रक का आवेश कम या अधिक होता है। उदजन (Hydrogen) का परमाणु सबसे हलका और इतना छोटा होता है कि इसे तेज शाली सूक्ष्मदर्शक यंत्र की सहायता से देखा जाना संभव नहीं है। आपको यह जान कर आश्चर्य होगा कि ऋणाणुओं का वजन उदजन के परमाणु के वजन का १|१८३५ वाँ भाग है। कुछ अरसा हुआ एंडर्सन ने धनाणुओं (Positrons) के अस्तित्व को खोज निकाला है। इन धनाणुओं के बारे म हम बहुत कम जानते हैं।

ऋणात्मक आवेश वाला पदार्थ वह है जिसमें ऋणाणु साधारण संख्या से अधिक हों। धनात्मक आवेश वाले पदार्थ में ऋणाणुओं की संख्या कम होती है। एक धातु में ऋणाणु कुछ परमाणुओं से निरंतर अलग होते रहते हैं और दूसरे परमाणुओं म प्रवेश करते हैं। अतः कई परमाणु धनात्मक और कई ऋणात्मक बन जाते हैं। जिस

धातु में ऐसे स्वतंत्र ऋणाणु अधिक होते हैं वह अच्छा चालक होता है। इसके विरुद्ध पृथग्न्यासक (Insulator) में स्वतंत्र ऋणाणुओं की संख्या नहीं के बराबर होती है।

इससे पाठकों को मालूम हो गया होगा कि सारे पदार्थों का सारभूत बिजली ही है। हम सब विद्युत्कणों से बने हुऐ हैं इसलिये यदि हमारे दैनिक जीवन में बिजली का प्रमुख उपयोग हो तो क्या आश्चर्य की बात है।

अट्ठारहवीं शताब्दि के मध्य में बैंजमिन फ्रेंकलिन ने अपनी ख्यातनामा पतंग की सहायता से यह प्रदर्शित किया कि गरजने वाले बादलों में बिजली का आवेश होता है। दो विरुद्ध आवेशों के मिलने से बिजली चमकती है। फ्रेंकलिन की यह खोज बड़ी महत्वपूर्ण मानी गई है। यह सौभाग्य की बात थी कि फ्रेंकलिन ने इस प्रयोग में अपनी जान नहीं खोई। इसके एक वर्ष पश्चात् रूस में ऐसा ही प्रयोग करने में एक मनुष्य अपनी जान से हाथ धो बैठा। फ्रेंकलिन ने तड़ित् चालक छड़ का आविष्कार किया। इस में से होकर बिजली जमीन में चली जाती है। जब आविष्ट बादल पेड़, चिमनी या किसी भवन की चोटी के पास पहुँचता है तो उस पर दूसरी तरह का आवेश उत्पन्न कर देता है। यदि यह आवेश शक्तिशाली हो या बादल पृथ्वी के बहुत नजदीक आ जाय तो बिजली और पृथ्वी के बीच की हवा के बहुत कम हो जाने से बिजली का विसर्जन हो जाता है और फल स्वरूप स्फुलिंग पैदा होता है। इसे बिजली का चमकना कहते है। विद्युत् विसर्ग के कारण

यडे जोर की आवाज होती है। यह आवाज हवा के एकाएक गर्म होने और फैलने के कारण होती है। पर हवा जब वापस लौटती है तो आवाज पैदा होती है।

विजली के गिरने से धन व जन की रक्षा करने के लिये तड़ित् चालकों का उपयोग किया जाता है। ये लाहे के छड़ होते हैं और ऊँचे मकानों पर लगाये जाते हैं। इनके नीचे का किनारा जमीन में गाड़ दिया जाता है। ऊपर की ओर ये खुले रहते हैं।

तार—जव हम वोलते हैं तो हम यातचीत करने के दो ढंग काम में लेते हैं। मुंह, जीभ और गले की सहायता से हम अपने फेफड़ों से निकलने वाली हवा की धारा को यदल देते हैं और उसमें कई तरह के कंपन पैदा कर देते हैं। ये कंपन बाहरी हवा में भी फैलते हैं और इस तरह से सुनने वाले के कानों तक पहुँच जाते हैं। इसके साथ साथ हम अपने ओंठ, भौं, पलक और यहाँ कदा हाथों को भी हिलाते रहते हैं। इस तरह से हम अपनी किसी बात पर खास दवाव डालते हैं। हमारे ये निर्देश प्रकाश लहरों पर अपना असर डालते हैं। ये प्रकाश लहरें वक्ता और श्रोता दोनों के बीच में निरंतर चलती हैं। इस तरह से भाषण और दृष्टि का संयोग होता है।

जव दो व्यक्ति एक दूसरे से काफी दूरी पर हों और आपस में बात करना चाहते हों तो उन्हें बड़े जोर से चिल्लाना पड़ेगा। जब दूरी और अधिक हो जाती है तो उनकी आवाज धीमी पड़ जाती है और एक दूसरे को

सुनाई नहीं पड़ती। ऐसे अवसर पर उन्हें खाली संकेतों से काम लेना पड़ता है। वे अपने हाथ, झंडा या रूमाल हिलाते हैं। कई मीलों का अंतर पड़ जाने पर संकेत भी काम नहीं देते और उस वक्त बातचीत करना बड़ा मुश्किल हो जाता है। आजकल ऐसे अवसर पर तार का आश्रय लेते हैं।

तार प्रेषण के आविष्कार का श्रेय हुक को है। हुक ने प्रकाश-तार का आविष्कार किया। इस तार से पेरिस से फ्रांस के किनारे तक कुछ ही घंटों में संवाद भेजा जा सकता था। जब सन् १८०९ में आस्ट्रिया में लड़ाई छिड़ी तो नेपोलियन ने इससे लाभ उठाकर आस्ट्रिया के रहने वालों पर एकाएक धावा बोल दिया जिससे उन्हें तैयारी करने का कोई मौका न मिला। बवेरिया के निवासी ऑस्ट्रिया वालों के सहायक थे इसलिये उन्हें भी इससे बड़ी हानि उठानी पड़ी। बवेरिया की सरकार ने म्यूनिख के एक प्रोफेसर को तार प्रेषण के ऐसे ढंग की खोज करने के लिये आदेश दिया जो नेपोलियन द्वारा प्रयुक्त ढंग से कहीं बढ़ कर हो। इस अध्यापक का नाम सोमेरिंग था। उसने इस काम को तुरत हाथ में लिया और चार दिन के बाद उसने पहला बिजली का तार बनाया जिससे रोमन वर्णमाला के A, B C D और F एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजे जा सकते थे। तार प्रेषण का यह ढंग बड़ा सरल और अनोखा था। इसमें बिजली की सहायता ली गई थी। इसमें एक बड़ा भारी दोष यह

था कि इसमें केवल पाँच वर्ण ही भेजे जा सकते थे। सवाद भेजने के लिये वर्णमाला के सारे अक्षर प्रेषित किये जाने चाहिये। इसलिये इस यंत्र में कुछ सुधार किया गया। इस यंत्र में एक घंटी भी लगाई गई जिससे सवाद लेने वाले आदमी का ध्यान इस ओर आकर्षित कर सके।

आधुनिक तार प्रेषण यंत्र का आविष्कार सम्युल एफ. बी. मोर्स ने किया था। इसमें थोड़ा बहुत सुधार किया गया है। ग्राहक यंत्र (Sounder) से कई तरह की आदि आवाजें पैदा होती हैं। एक साधारण तार प्रेषण यंत्र में बेटरी, दाब कुंजी (Tapping key) और ग्राहक यंत्र होते हैं। दाब कुंजी से बिजली के सर्किट का बंद या मुक्त किया जा सकता है। ग्राहक यंत्र में एक विद्युत चुम्बक (Electro magnet) होता है जिसके साथ एक लोहे का आर्मेचर लगा रहता है। यह आर्मेचर धातु के एक छड़ से बंधा रहता है। धातु का यह छड़ ऊपर नीचे घूमता है। जब बिजली की धारा चुम्बक में से चलती है तो आर्मेचर खींचा जाता है और जब सर्किट बंद हो जाता है तो कमानी छड़ को ऊपर धकेल देती है। छड़ के ऊपर और नीचे दो पंच लगे रहते हैं जो इसकी गति को रोकते हैं और परिणामतः आवाज उत्पन्न करते हैं। इन पंचों के छड़ से टकराने पर जो आवाज होती है वह विभिन्न स्वर की होती है। दोनों आवाजों का जो समयान्तर

होता है वह बिंदु या एक सीधी लकीर मानी जाती है। अंतर कम होने पर बिंदु और अधिक होने पर सीधी लकीर समझी जाती है। बिंदु और लकीर को कई तरह से मिला कर वर्णमाला के अक्षर बना लिये जाते हैं।

टेलीफोन—टेलीफोन की सहायता से हम सैकड़ों मील दूरस्थ मित्रों से बातचीत कर सकते हैं। जब हम जोर से बोलते हैं तो हवा में लहरें पैदा होती हैं। यह ज्यों ज्यों आगे बढ़ती हैं त्यों त्यों फैलती जाती हैं। फैलने से ध्वनि कमजोर होती जाती है। इसके विपरीत यदि हम एक लंबी नलिका में बोलते हैं तो हमारी आवाज बिना कमजोर पड़े काफी दूर तक पहुँच सकती है। इसका कारण यह है कि ध्वनि की लहरों को फैलने का अवसर नहीं मिलता। यदि आवाज तार द्वारा भेजी जा सके तो और भी लंबी दूरी तक पहुँच सकती है। दो कनस्तर लेकर दोनों के तले में छेद करके उन्हें आपस में लंबे तार से जोड़ देने पर यदि एक मनुष्य एक कनस्तर में मुंह डाल कर बोले और दूसरा दूसरे कनस्तर के पास कान ले जा कर सुने तो उसे आवाज बिलकुल साफ सुनाई देगी। इसमें ध्वनि लहरें तार में से होकर चलती हैं। इस तरह का यंत्र एक तरह का टेलीफोन कहा जा सकता है। टेलीफोन यंत्र में बिजली और चुम्बक का प्रयोग होता है।

टेलीफोन यंत्र के आविष्कारक अमेरिका के निवासी एलेक्जेंडर ग्राहम बेल थे। उनका यंत्र इतना सरल था कि लोगों को उसे देख कर निराशा सी हुई। इस यंत्र को

था कि इससे केवल पाँच वर्ण ही भेजे जा सकते थे। संवाद भेजने के लिये वर्णमाला के सारे अक्षर प्रेषित किये जाने चाहिये। इसलिये इस यंत्र में कुछ सुधार किया गया। इस यंत्र में एक घंटी भी लगाई गई जो संवाद लेने वाले आदमी का ध्यान इस ओर आकर्षित कर सके।

आधुनिक तार प्रेषण यंत्र का आविष्कार सेम्युल एफ. बी. मोर्स ने किया था। इसमें थोड़ा बहुत सुधार किया गया है। ग्राहक यंत्र (Sounder) से कड़ कड़ आदि आवाजें पैदा होती हैं। एक साधारण तार प्रेषण यंत्र में बैटरी, दाब कुंजी (Tapping key) और ग्राहक यंत्र होते हैं। दाब कुंजी से बिजली के सर्किट को बंद या मुक्त किया जा सकता है। ग्राहक यंत्र में एक विद्युत् चुंबक (Electro magnet) होता है जिसके साथ एक लोहे का आर्मेचर लगा रहता है। यह आर्मेचर धातु के एक छड़ से बंधा रहता है। धातु का यह छड़ ऊपर नीचे घूमता है। जब बिजली की धारा चुंबक में से चलती है तो आर्मेचर खींचा जाता है और जब सर्किट बंद हो जाता है तो कमानी छड़ को ऊपर ढकेल देती है। छड़ के ऊपर और नीचे दो पेच लगे रहते हैं जो इसकी गति को रोकते हैं और परिणामतः आवाज उत्पन्न करते हैं। इन पेचों से छड़ के टकराने पर जो आवाज होती है वह विभिन्न स्वर की होती है। दोनों आवाजों का जो समयान्तर

फैलने के लिये स्थान मिल जाता है। जब ये पास पास होते हैं तो उनमें विजली का चालन अच्छी तरह से होता है। इस लिये जब झिल्ली अदर की ओर घूमती है तो परिणामक के प्राथमिक वेष्टन में तेज धारा प्रवाहित होती है और जब झिल्ली वाहर की ओर आ जाती है तो धारा कम हो जाती है। जब प्राथमिक वेष्टन में धारा अधिक होती है तो द्वितीय वेष्टन में एक तरफ को उपपादित धारा (Induced current) पैदा होती है। जब धारा कम हो जाती है तो द्वितीय वेष्टन में दूसरी ओर को उपपादित धारा पैदा होती है। यदि आवाज प्रति सेकेंड ३०० ध्वनि लहरें उत्पन्न करती है तो झिल्ली वाहर और भीतर एक सेकेंड में ३०० वार आती जाती है और इस तरह से द्वितीय वेष्टन में ६०० उपपादित धाराएँ उत्पन्न होती हैं। ये उपपादित धाराएँ टेलीफोन के ग्राहक यंत्र में पहुचती हैं।

ग्राहक यंत्र (Receiver) में एक पतली लचकदार लोहे की चद्दर होती है और उसके नीचे एक चुंबक लगा रहता है। यह चद्दर किनारों पर इस तरह से बंधी रहती है कि यह चुंबक के ध्रुवों के निकट तो रहती है पर उन्हें स्पर्श नहीं करती। यह चुंबक स्थायी चुंबक होता है और उसके प्रत्येक ध्रुव पर महीन तार के वेष्टन चढ़े रहते हैं इस वेष्टन के तार के दोनों छोर परिणामक के द्वितीय वेष्टन से जुड़े रहते हैं। इस तरह से चुंबक स्थायी चुंबक होने के अलावा विद्युत् चुंबक (Ele tro-magnet)

भी होता है। लोहे की चद्दर स्थायी चुंबक की शक्ति के कारण अंदर की ओर मुड़ी रहती है और जब धारा वेष्टन में इस तरह पहुँचती है कि स्थायी चुंबक की शक्ति अधिक हो जाती है तो लचकदार चद्दर अंदर की तरफ और अधिक मुड़ जाती है। दूसरी उपपादित धारा की दिशा बदल जाने से स्थायी चुंबक के ध्रुवों का बल क्षीण हो जाता है। फल यह होता है कि चद्दर बाहर की ओर मुड़ जाती है। इस तरह से धारा की दिशा परिवर्तित होती रहने से चद्दर कभी भीतर की तरफ और कभी बाहर की ओर मुड़ती रहती है। यदि यह आवाज प्रेषक यंत्र में प्रति सेकेंड ३०० ध्वनि लहरें पैदा करती हैं तो ग्राहक यंत्र में भी सेकेंड ३०० बार लोहे की चद्दर भीतर बाहर मुड़ती रहती है। यह चद्दर ग्राहक यंत्र में वर्तमान हवा में ३०० ध्वनि लहरें उत्पन्न करती है। ये जब कान तक पहुँचते हैं तो हमें आवाज सुनाई देती है। आप देखेंगे कि टेलीफोन के तार में ध्वनि संचालन न हो कर विद्युत संचालन होता है। ध्वनि केवल प्रेषक यंत्र की चद्दर तक पहुँचती है। उसके बाद ग्राहक यंत्र तक बिजली की धारा बहती है। ग्राहक यंत्र की चद्दर की गति से आवाज उत्पन्न होकर कर्णेन्द्रियों तक पहुँचती है।

टेलीफोन के आविष्कार ने व्यापारिक जगत में हल चल मचा दी है। वस्तुओं के भाव की जानकारी व्यापारियों का यह प्रिय मात्र साधन है। आजकल हम न

स्वचालितटेलीफोन

बिजली का बल्ब
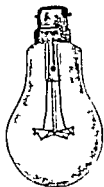
सूक्ष्मदर्शक यन्त्र
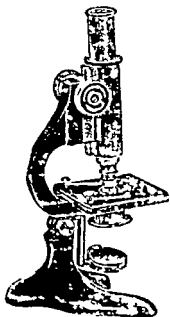
केवल अपने नगरस्थ मित्रों से ही बातें कर सकते हैं प्रत्युत ट्रंक टेलीफोन की सहायता से घर बैठे दिल्ली, कलकत्ता, बंबई आदि प्रमुख नगरों के निवासियों से बातचीत की जा सकती है। आजकल स्वयं-चालित टेलीफोन यंत्र बन गये हैं जिनमें केवल नंबर मिला देने से बातचीत हो जाती है। इस तरह से एक्सचेंज वालों से घंटों खटपट नहीं करनी पड़ती।

आधुनिक टेलीफोन यंत्र में प्रेषक और ग्राहक यन्त्र एक साथ लगे रहते हैं। ये दोनों बेकेलाइट के बने ढाँचे में बंद रहते हैं। बेकेलाइट बड़ा अच्छा प्रथम्न्यासक पदार्थ है। जब इसे अपने आधार (Cradle) पर रख दिया जाता है तो सर्किट बंद हो जाता है और विद्युत् धारा नहीं चलती और जब इसे उठा लिया जाता है तो आधार कुछ ऊपर उठ आता है और सर्किट पूरा हो जाता है। इससे बिजली की धारा चलने लगती है।

बेतार का तार और रेडियो—बेतार के तार के आविष्कार का श्रेय एक इटेलियन नवयुवक इंजिनियर को मिला। आपका नाम मारकोनी था। मारकोनी ने सन् १९०१ में इंगलैंड से अमेरिका को बेतार के संवाद भेजे। यह दूरी २०० मील से भी अधिक थी। मारकोनी ने दो गोल गेंद ली और उनमें दो तार बांध दिये। इनमें से एक तार हवा से और दूसरा जमीन से संबद्ध कर दिया जाता है। विद्युत् विसर्ग Electric discharge) होने से जब स्फुलिंग पैदा

होती है तो हवा वाले तार में अधिक आवेश चला जाता है। इसके बाद यह नीचे जाता है और फिर ऊपर आता है। इस तरह का प्रत्येक उतार चढ़ाव पहले के उतार चढ़ाव से कम होता जाता है और अंतमें यह हो जाता है। जब भी स्फुलिंग पैदा होता है ये उतार चढ़ाव होने लगते हैं। इससे तार के आस पास की हवा में लहरें पैदा हो जाती हैं। उपपादन वेष्टन (Induction coil) और बेटरी की सहायता से स्फुलिंग बराबर उत्पन्न होते रहते हैं। जब ये लहरें ग्राहक यंत्र म पहुँचती हैं तो व एरियल म वैसी ही विद्युत् लहरें उत्पन्न करती हैं और तार झूलने लगता है। तार के ये उतार चढ़ाव क्षणिक होने के कारण टेलीफोन के ग्राहक यंत्र या धारा मापक यंत्र (Galvanometer) से मालूम नहीं किये जा सकते। इसके लिए मारकोनी ने एक छोटी काँच की नली में कुछ धातु का चूरा भरा। यह चूरा साधारण अवस्था म बिजली का चालन रोक देता है पर जब इसमें बिजली की लहरें आती हैं तो इसके कण परस्पर चिपक जाते हैं। अब इसमें बिजली का संचालन होने लगता है। खाली हिलाने मात्र से यह पूर्ववत् बिजली का कुचालक हो जाता है। कुछ समय पश्चात् इसके स्थान पर सरल कारक (Rectifier) यंत्र का उपयोग किया जाने लगा। इसमें फौलाद की एक महीन नोक कारबोरंडम के रवे को स्पर्श करती रहती है। इस यंत्र म बिजली की लहरों को एक ओर ही जाने का गुण है। जब टेलीफोन का ग्राहक यंत्र इस सरलकारक

यंत्र से जोड़ दिया जाता है तो प्रेषक यंत्र में उत्पन्न होने वाला स्फुलिंग सरलकारक यंत्र मे से अर्ध लहरें भेजता है जो मिलकर एक धारा पैदा करती हैं। यह धारा टेलीफोन के चद्दर को गतिवान बनाती है और इस तरह आवाज सुनाई देती है। मोर्स विधि से इस तरह खबरें सुनी जाती हैं। आजकल बिजली के स्फुलिंग के स्थान पर बिजली के आर्क का उपयोग किया जाता है। इससे भाषण आसानी से सुनाई देता है क्योंकि यह लगातार बिजली की लहरें उत्पन्न करता रहता है। इससे भाषण व संगीत ब्राडकास्ट किये जा सकते हैं।

आजकल लहरों को सरल बनाने के लिये वाल्व का उपयोग किया जाता है। ये वाल्व लहरों को तीव्र करने के काम में भी लिये जा सकते हैं। प्रेषक यंत्र में लहरों को उत्पन्न करने के लिये भी बड़े बड़े वाल्वों का प्रयोग किया जाता हैं। ये वाल्व कॉच के वल्व होते हैं जिनमें से हवा निकाल ली जाती है और उसके भीतर एक तार होता है जो बिजली की धारा से गर्म रखा जाता है इसके अतिरिक्त इस तार को घेरती हुई धातु की एक प्लेट होती है। इन दोनों के बीच में तार का एक खुला वेष्टन होता है जिसे जाल (Grid) कहते हैं।

इस तरह से रेडियो की सहायता से हम घर बैठे विदेश में होने वाले भाषण, संगीत, समाचार आदि सुन सकते हैं। प्रत्येक ब्राडकास्टिंग स्टेशन का अलग अलग तरंग दैर्ध्य होता है। हम ग्राहक यंत्र में घटन के

सहायता से उसे किसी खास तरंग दैर्घ्य के लिये ग्राहक बना लेते हैं। बम्बई, कलकत्ता, लखनऊ, दिल्ली, लाहौर, पेशावर, मद्रास आदि अनेक स्थानों से ब्रॉडकास्टिंग किया जाता है। इनके अतिरिक्त हम रेडियो में लन्दन बर्लिन, पेरिस आदि अनेक स्थानों में होने वाले प्रोग्राम को सुन सकते हैं। उसके लिये हमें विज्ञान के पुजारी मारकोनी का कृतज्ञ होना चाहिये।

दूर दर्शन (Television)—दूर दर्शन यंत्र का आविष्कार जोन एल० बेयर्ड ने किया है। इसमें हमें घर बैठे दूरस्थ वस्तुओं के प्रतिबिंब दिखलाई पड़ते हैं। दूरदर्शन का आविष्कार सन् १९२६ ई० में हुआ। प्रेषण स्थान में आर्क लैंप से उत्पन्न एक बहुत ही तेज प्रकाश चक्कर खाते हुए स्कैनिंग घेरे पर सर्पिल आकार में किये हुए छिद्रों में से होकर दूर भेजे जाने वाले पदार्थ पर पड़ता है। इस तरह से पदार्थ के विभिन्न भागों पर बारी बारी से प्रकाश पहुँचता है। पदार्थ से परावर्तित होकर प्रकाश तीन बड़े प्रकाश विद्युत् सैलों पर पड़ता है और ये बिजली की विभिन्न धारायें जो प्रकाश और छाया के घटने बढ़ने के अनुसार होती हैं पैदा करती हैं। ये घटने बढ़ने वाली धारायें परिवर्तित होती हैं और हवा में लहरें उत्पन्न करती हैं। ये लहरें ग्राहक यंत्र में पहुँच कर वहाँ के ऑसिलेटर में दोलन (Oscillator) पैदा करती हैं और ये साधारण तौर पर ग्राहक यंत्र में ले जाई जाती हैं। वहाँ पर ये नियॉन

लेंप के प्रकाश को परिवर्तित कर देती है। यह प्रकाश पदार्थ पर पड़ने वाले प्रकाश जैसा होता है। दर्शक स्केनिंग घेरे में से लेंप को देखता है। यह घेरा उसी तरह घूमता है जिस तरह प्रेषक यन्त्र का स्केनिंग घेरा चक्कर काटता है। इस तरह हमें पदार्थों के प्रतिबिम्ब दिखलाई पड़ते हैं। दूरदर्शन के ग्राहक यन्त्र रेडियो के ग्राहकयन्त्र सरीखे ही होते हैं। इसमें दिखाई पड़ने वाली तसवीर सफेद और काली होती है और उसका आकार १०"×७½" होता है। यह तसवीर ग्राहक यंत्र के ऊपरी भाग पर दिखाई देती है। सिनेमा दूरदर्शन में चित्रों का आकार १२'×१०' तक होता है। यह भी प्रयत्न हो रहा है कि दूरदर्शक यन्त्र द्वारा पदार्थों के रंगीन प्रतिबिंब भी भेजे जा सकें। आगे चल कर सम्भवत: दूर दर्शन रेडियो के समान घर घर में प्रचलित हो जाय।

केथोड और क्ष-किरण (X Ray)—क्ष किरणों का उपयोग अधिकतर चिकित्सा-विज्ञान में किया जाता है। जब क्ष-किरणें हाथ पर डाली जाती हैं तो वे मास का भेदन कर अस्थियों तक पहुँच जाती हैं। क्ष किरणों के प्रकाश में चित्र खींचने पर अस्थियों की तसवीर आती है। इससे किसी हड्डी के टूटने का पता लग सकता है। कई रासायनिक पदार्थ क्ष किरणों के संयोग से दीप्तिमान हो जाते हैं। बेरियम प्लेटिसाइनाइड ऐसा ही एक पदार्थ है।

यदि किसी गैस को एक नली में बन्द कर उसका दबाव कम कर दिया जाता है तो उसकी पृथग्न्यासन शक्ति

कम हो जाती है जिससे उसमें विद्युत्-विसर्ग आसानी से पैदा किया जा सकता है। यह विद्युत्-विसर्ग प्रतिछोरों (Electrodes) के बीच में रंगीन प्रकाश उत्पन्न करता है। जब दबाव बहुत ही कम हो जाता है तो अदृश्य कैथोड किरणें उत्पन्न होती हैं। इन किरणों में मौजूद कण ऋणाणु होते हैं और ये गैस के परमाणुओं से निकलते हैं। ये किरणें जब किसी पदार्थ पर पड़ती हैं तो उसे गर्म कर देती हैं और पदार्थ की छाया पीछे काँच पर पड़ती है। जिस पदार्थ पर ये पड़ती हैं उसमें ऋणात्मक आवेश उत्पन्न हो जाता है। इन ऋणाणुओं का वेग १८००० मील प्रति सकेंड होता है।

यदि कैथोड किरणें किसी पदार्थ पर पड़ती हैं तो वह पदार्थ एक दूसरी तरह की किरणें उत्पन्न करता है इन्हें क्ष-किरणें कहते हैं। क्ष-किरणों को पहले पहल सन् १८९५ में रोञ्जन ने खोज निकाला था। क्ष-किरणें कैथोड किरणों से सर्वथा अलग होती हैं। क्ष-किरणें एक तरह की प्रकाश रश्मियाँ हैं। इन किरणों का तरंग दैर्ध्य साधारण प्रकाश रश्मियों के तरंग दैर्ध्य का दस हजारवाँ हिस्सा होता है इससे ये कड़े ठोस पदार्थों के आरपार भी चली जाती हैं पर ये धातुओं का भेदन नहीं कर सकतीं। ये माँस के आरपार अवश्य चली जाती हैं। घने पदार्थ क्ष किरणों के लिये अपार दर्शक होते हैं। अस्थियाँ माँस से अधिक घनी होती हैं इस लिये क्ष-किरणें माँस के आरपार तो चली जाती हैं पर ये अस्थियों का भेदन नहीं कर सकतीं।
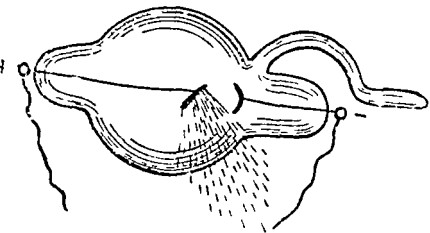
क्ष-किरण
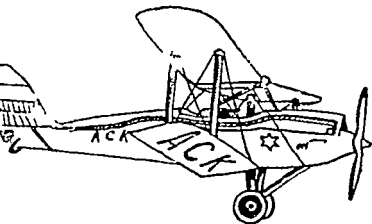
वायुयान

विद्युत् प्रकाश—भाप या जलबल से सचालित यत्रो से बिजली पैदा की जाती है। बिजली घरों से तार द्वारा बिजली घर घर में वितरित की जाती है। इसका वोल्टेज कम करने के लिये परिणामकों का प्रयोग किया जाता है। बिजली के तार सीसे की नली में से होकर घर म प्रवेश करते हैं। वहाँ पर मुख्य फ्यूज लगे रहते हैं। यहाँ से तार द्वारा बिजली विद्युत्मापक यत्र (वाटमीटर) में प्रवेश करती है और वहाँ से मुख्य स्विच तक जाती है। मुख्य स्विच से वितरण बोर्ड तक पहुँच कर वहाँ से कमरों म जाती है। वितरण बोर्ड में हरेक सर्किट का फ्यूज लगा रहता है। हरेक कमरे में अलग अलग स्विच होते हैं जिससे बिजली के दीपक जलाये व बुझाये जा सकते हैं। फ्यूज के जल जाने पर दीपक बुझ जाता है। ऐसा होने पर मुख्य स्विच बद करके नया फ्यूज लगा दिया जाता है।

बिजली के लेंप में टंजस्टन के पतले तार होते हैं। टंजस्टन धातु का द्रवणाक (Melting point) बहुत ऊँचा होता है इसलिये बहुत अधिक गर्म होने पर भी यह पिघलता नहीं। यह महीन तार बिजली से गर्म होकर दीप्तिमान हो जाता है जिससे हमें प्रकाश मिलता है। यह तार बहुत ही पतला पर काफी लंबा होता है। दो छोटे तारों में से होकर बिजली लेंप में आती जाती रहती है। ये तार बल्ब में जुड़े रहते हैं जिससे हवा अंदर प्रवेश न कर सके। पहले बिजली के बल्ब में से हवा निकाल ली जाती थी क्योंकि यदि बल्ब में हवा रह जाय तो तार जल

जाता है। ऐसे बल्ब में टंगस्टन का तार धीरे धीरे गैस में परिणत होने लगता है और बल्ब के भीतर धातु का आवरण सा जमा हो जाता है। इससे लैंप की क्षमता कम हो जाती है। आजकल बल्ब में नत्रजन (Nitrogen) या आर्गन गैस भर दी जाती है। इससे तार गैस में परिणत नहीं होता और इसकी उपस्थिति में टंगस्टन धातु के तार का तापक्रम भी और अधिक बढ़ सकता है। इस से प्रकाश का तेज काफी अधिक हो जाता है। घरों में लगभग २२५–२३० वोल्ट की बिजली का उपयोग किया जाता है। प्रकाश की दीप्ति वाट में नापी जाती है। एक वाट में ०.८ मोमबत्ती का प्रकाश होता है। ६० वाट के लैंप से ५० मोमबत्ती के बराबर प्रकाश मिलता है। एक सहस्र वाट का एक यूनिट माना जाता है। टंगस्टन लैंप की आयु लगभग १००० घंटे की होती है अर्थात् टंगस्टन का लैंप १००० घंटों तक जलाया जा सकता है।

गलियों और बड़ी इमारतों में आर्क लैंप का उपयोग किया जाता है। आर्क लैंप का स्थान कई जगहों पर गैस से भरे हुए टंगस्टन लैंपों ने ले लिया है। आर्क लैंप में कार्बन के दण्ड होते हैं जो विद्युत् सुचालक द्वारा संचालित होते हैं। जब बिजली की धारा चलती है तो यह कार्बन के दण्डों को कुछ दूर कर देती है जिससे आर्क बन जाता है। बिजली की धारा के बंद हो जाने पर कार्बन के दण्ड आपस में मिले रहते हैं। चूंकि बिजली की धारा चलती रहती है कार्बन के दण्ड पिघल जाते हैं और आर्क

लंबा होता जाता है । इसके लंबे होने पर प्रतिरोध बढ़ जाता है जिससे धारा कम हो जाती है । ज्योंही धारा कम होती है चुंबक की शक्ति भी कम हो जाती है और कार्बन के छड़ नजदीक आ जाते हैं । इससे आर्क छोटा हो जाता है, प्रतिरोध कम होता है और बिजली की धारा बढ़ जाती है। इससे चुंबक शक्तिशाली होकर छड़ों की दूरी को बढ़ा लेता है । इस तरह से यह चक्र चलता है ।

पारे के आर्क लेंप में नली स्फटिक (Quartz) की बनी हुई होती है। पारा नली के नीचे रहता है। बिजली की धारा पारे की भाप में से चलती है और चमकने लगती है । इस से लाल के अतिरिक्त सब रंगों का प्रकाश मिलता है। पारे के आर्क लेंप से नीललोहितोत्तर प्रकाश भी प्राप्त किया जा सकता है । एक दूसरे तरह के लेंप में जिसे सूर्य दीपक (Sun Lamp) कहते हैं टंजस्टन के दो विद्युत-द्वार (Electrodes) पास पास होते हैं और वे टंजस्टन के बने महीन तार से जुड़े रहते हैं । बल्ब में नीचे कुछ पारा होता है । बिजली से तार चमकने लगता है और वह पारे को गैस में परिणत करता है इससे विद्युत् द्वारों के बीच में पारे का आर्क बनता है और टंजस्टन के तार का चमकना बंद हो जाता है । पारे के अलावा आर्कलेंप में सैंधवियम (Sodium का उपयोग भी किया जाता है । बल्ब में पारे के स्थान सैंधवियम होता है और आर्क को शुरु करने के लिये कुछ नियन

गैस भी होती है । इससे पहले लैंप या प्रकाश लाल रंग का होता है पर बाद में यह पीला हो जाता है। इन लैंपों का प्रकाश साधारण दीपकों के प्रकाश से तिगुना होता है ।

बिजली का उपयोग विद्युत भट्टी, विद्युत विश्लेषण आदि कई कामों में होता है । विद्युत् विश्लेषण द्वारा एक धातु पर दूसरी धातु का मोल या परत चढ़ाई जाती है । लोहा एक बहुत ही उपयोगी धातु है पर उसमें एक बड़ा भारी अवगुण है । पानी और हवा की मौजूदगी में उस पर जंग चढ़ जाता है और इस तरह से लोहा लोहे के आक्साइड में परिणत हो जाता है । इससे बचाव के लिये लोहे पर जस्ते या निकल का मोल चढ़ा दिया जाता है । यह विद्युत्-विश्लेषण (Electrolysis) से किया जाता है । चांदी के गहनों पर सोने का मोल भी इसी विधि से चढ़ाया जा सकता है । यही नहीं छपाई के लिये टाइप बनाने धातुओं का परिशोधन करने और रासायनिक पदार्थों के तैयार करने में इसी विधि का आश्रय लिया जाता है । विद्युत् विश्लेषण में दो विद्युत् द्वार होते हैं इनमें एक तो वह जिस पर परत चढ़ानी होती है और दूसरा वह होता है जिससे परत चढ़ानी है । पहला ऋणद्वार और दूसरा धनद्वार कहलाता है । सोने का मोल चढ़ाने के लिये ये दोनों द्वार स्वर्ण पोटाश स्यानिद (Gold potassium cyanide) के घोल में रखे जाते हैं और बिजली

की धारा चलाई जाती है। लोहे पर जस्ते का झोल चढाने के लिये यशद गधेत (Zinc sulphate) का घोल काम में लिया जाता है। ब्लॉक व टाइप बनाने के लिये पहले मोम पर उनका ठप्पा ले लिया जाता है और उस पर ग्रेफाइट का आवरण चढाकर ताम्रगधेत के घोल में रखा जाता है। इसके बाद उसे बैटरी के ऋणात्मक तार से जोड दिया जाता है। इससे यह ऋणद्वार बन जाता है। एक तांबे की प्लेट को उसी घोल में रख कर धनात्मक तार से बैटरी से सबद्ध कर दिया जाता है। बिजली की धारा के चलने पर ताम्बे की प्लेट से ताबा अलग होकर मोम के ठप्पे पर चढ़ने लगता है। इसके बाद ताबे से मोम अलग कर लिया जाता है।

———

आकाश में उडान

हिंदू धर्मशास्त्रों में विमानों का उल्लेख अनेक स्थानों पर मिलता है। इसके अतिरिक्त लोक गाथाओं में उड़न-खटोले का वर्णन भी मिलता है। इससे यह निश्चय हो जाता है कि हमें हवाई जहाजों के निर्माण की विद्या मालूम थी। कालांतर में इस विद्या का लोप होगया। बहुत से लोग कहते हैं कि पुराणों में ऐसी अनेक बातें मिलती हैं जो असंभव है और खाली लोगों के दिमाग की उपज है। हमारा ऐसे लोगों से मत भेद है। प्राचीन काल में लोग विमान का प्रयोग करते थे इस बात में हमें तो कुछ भी झूठ नहीं मालूम होता। हवा में उड़ना वैज्ञानिक सिद्धांतों के अनुसार संभव है। जब आजकल हवाई जहाज में बैठकर हम आकाश यात्रा कर सकते हैं तो कोई कारण नहीं मालूम होता कि प्राचीन काल में लोगों के लिये आकाश यात्रा संभव ... पुराणों में वर्णित

बहुत सी बातों के पीछे सत्य छिपा हुआ है, ऐसा हमारा विश्वास है।

गुब्बारा पहला यन्त्र है जिसने लोगों का हवा में उड़ना संभव बनाया। चीन की राजधानी पेकिन में सन् १३०६ में चीन सम्राट् के राज्याभिषेकोत्सव पर गुब्बारे को उड़ाया गया था। सन् १७८७ में लिस्बन नगर के एक पुजारी ने गर्म हवा से भरे हुऐ गुब्बारे में बैठ कर आकाश यात्रा की थी। फ्रांस के कागज के कारखाने के स्वत्वाधिकारी मोंट गोल्फायर बंधुओं ने रेशम का गुब्बारा बनाया। इस गुब्बारे का छेद नीचे की ओर था। इसमें गर्म हवा भरी गई। यह गुब्बारा हवा में उड़ा पर ज्यों ही उसमें भरी हुई हवा ठंडी हुई गुब्बारा नीचे आ गिरा। इसलिये उन्होंने एक नया गुब्बारा ४० फुट ऊँचा बनाया। नीचे के छिद्र में एक टोकरी लटकायी गई और इसमें गीला घास और ऊन रखी गई जिससे धीमी आंच मिलती रहने से गुब्बारे की हवा गर्म बनी रही। यह गुब्बारा हवा में ऊँचा उठा और कुछ देर बाद अदृश्य होगया। पेरिस में रोबर्ट और चार्ल्स नाम के दो भाइयों ने १२ फुट व्यास का एक गुब्बारा बनाया और उसे उदजन गैस से भरा। यह आकाश में उड़कर बहुत दूर चला गया। मोंट गोल्फायर बंधुओं ने गुब्बारे के नीचे टोकरी बांध कर उसमें एक भेड़, एक मुर्गे और एक बतख को रखा। यह गुब्बारा उड़कर नीचे आया और वे तीनों जानवर

सकुशल जमीन पर आ उतरे। अब गुब्बारों में आदमी भी बैठकर हवा म उड़ने लगे। चार्ल्स और रोवर्ट ने गुब्बारों में बैठकर आकाश यात्रा की। सन १८६२ म ग्लेशर और कोक्सवेल गुब्बारे में बैठकर सात माल की ऊँचाई तक पहुँचे। इससे उनकी नाड़ी की गति ११० प्रति मिनट होगई और उनके चेहरे नीले पड़ गय और अंतता गत्वा ग्लेशर तो मूर्च्छित भी हो गया। काक्सवल के हाथ ने अत्यधिक सर्दी के कारण काम करना बंद कर दिया इसलिये उसने दांतों से रस्सी को खींचा और इस तरह से वे सकुशल नीचे उतर आये।

हवाई जहाज (Air ship) गत कई वर्षों म बहुत अधिक संख्या म बनाये गये हैं। इनमें यह खूबी होती है कि वे चाहे जिस दिशा की ओर ले जाये जा सकते हैं। उनका आकार सिगार जैसा होता है। इनमें से कुछ में बैठने के स्थान हलके फौलाद या एल्यूमीनियम के बन हुए होते हैं। ऐसे हवाई जहाज हजारों मील दूर तक उड़ सकते हैं। एक जर्मन अफ्सर काउंट जेपलीन ने सन १९०७ म एक महत्वपूर्ण हवाई जहाज को बनाया। यह जहाज ८२० फुट लंबा था और इसकी ऊँचाई ३८ फट थी। इस म सोलह अलग अलग स्थान थे। यदि उनमें से एक में भी छोटा सा छेद कर दिया जाता तो हवाई जहाज धीरे धीरे नीचे आने लगता। पिछले महायुद्ध में ऐसे बहुत से हवाई जहाज काम में लिये गये थे। जर्मनों द्वारा इन हवाई जहाजों से बेलजियम और रूमानिया पर बहुत से आक्रमण

किये गये। इस महायुद्ध में भी हवाई जहाजों का प्रमुख स्थान है। कई ऐसे भी हवाई जहाज बनाये जाते हैं जो पनडुब्बे जहाजों को खोजने का काम करते हैं। समुद्र को बहुत अधिक ऊँचाई से देखने पर वह अधिक पारदर्शक हो जाता है। इसलिये हवाई जहाज से समुद्र के भीतर के पदार्थ देखे जा सकते हैं। आर ३४ जहाज की लम्बाई ६३९ फुट थी और उसे भरने के लिये लगभग बीस लाख टन उदजन गैस की आवश्यकता होती थी। इस जहाज ने ३० मनुष्यों को लेकर अटलांटिक महासागर की दोनों ओर यात्रा की थी।

सन् १९०३ मे दो अमेरिकन नवयुवकों ने वायुयान (Aeroplane) में बैठ कर आकाश यात्रा की। ये वायुयान में बैठकर उड़ने वाले प्रथम व्यक्ति थे। सन् १९०९ में एम लूई ब्लेरियो ने केले से डोवर तक अपने बनाये हुए वायुयान में बैठ कर तीस मिनट में यात्रा की। लगभग दस मिनट तक वह जमीन से काफी ऊँचाई पर रहा। हवाई जहाजों की तरह वायुयानों की गत महायुद्ध मे बहुत उन्नति हुई। एक पक्षी वायुयान में पखों का एक जोड़ा है और द्विपक्षी वायुयान में परों के दो जोड़े होते हैं। इनमें एक जोड़ा दूसरे जोड़े से कुछ ऊपर होता है। एक पक्षी वायुयानों के पंख मोटे होते हैं।

प्रोपेलर शक्तिशाली गैसोलीन के इंजिनों से चलाये जाते हैं। छोटे वायुयानों में सामने एक प्रोपेलर होता है जो वायुयान को आगे खींचता है। बड़े वायुयानों में कई

प्रोपेलर होते हैं। वायुयानों में नीचे की ओर दो या अधिक पहिये होते हैं जिनसे वे जमीन पर उतर और ऊपर उठ सकें। समुद्री वायुयानों म पहिये नहीं होते। वे पानी में उतर कर तैरते हैं। वायुयान हवा से कहीं भारी होते हैं। हवा के ऊपरी दबाव के कारण ये ऊपर टठे रहते हैं। प्रोपेलर के तेजी से चलने पर यह दबाव वायुयान के वजन से अधिक हो जाता है और फलस्वरूप वायुयान ऊपर उठता है।

वायुयानों की सहायता से बहुत से अद्‌भुत कार्य किये गये हैं। पिरेनीज और आल्प्स पर्वतमालाओं तक तो लोग वायुयान में उड़ कर कई बार पहुँच गये हैं। सन १९३३ में हिमालय पर्वत पर भी चढ़ाई की गई। हिमालय के ऊँचे शिखरों तक दो बार चढ़ाई की गई और उच्चतम शिखरों के चित्र खींचे गये। इनमें एवरेस्ट शिखर और नगा पर्वत और दूसरी ऊँची चोटियाँ भी शामिल हैं।

वायुयान वर्तमान कालीन युद्ध में बहुत ही आवश्यक वस्तु है। जिस देश में वायुयान अधिक बनाये जाते हों और जहाँ पेट्रोल अधिक परिमाण में मिलता हो, उस देश की विजय निश्चित है। वर्तमान युद्ध वायुयानों की लड़ाई है। वायुयानों की गति ४४० मील प्रति घंटे तक होती है। वायुयानों की आवश्यकता लड़ाई में तो पड़ती ही है इसके अतिरिक्त नकशे तैयार करने और नये प्रदेश मालूम करने में ये बड़े उपयोगी सिद्ध होते हैं। सन् १९२६ में उत्तरी ध्रुव की यात्रा की गई। वायुयान

दक्षिणी ध्रुव तक भी जो समुद्र की सतह से ८,००० मील ऊँचा है, पहुँच चुके हैं। टिड्डी दल और अन्य हानिकारक जीवाणुओं को नष्ट करने के लिये भी वायुयान से सहायता मिलती है। उसमें बैठ कर हम ऐसे देश में जहाँ ऐसे प्राणी बहुत होते हैं पहुँच जाते हैं और वहाँ ऊपर से कीटाणु नाशक पदार्थ जमीन पर गिरा देते हैं।

वायुयानों ने दूर दूर की यात्रा में समय की काफी बचत करदी है। आजकल वायुयान विदेशों से बराबर आते जाते हैं। इनमें विदेशों से डाक आती और यहाँ से विदेशों में डाक भेजी जाती है। इससे हम विदेशों से आवश्यक वस्तुएँ जल्दी प्राप्त कर सकते हैं।

———

रेडियम की कहानी

सन् १८९६ में बेक्वेरल ने मालूम किया कि पोटाश यूरेनियम गंधेत (Potassium Uranium sulphate) के रवा में कागज में लपेटी हुई फोटोग्राफी की प्लेट को प्रभावित करने का गुण है। उसने इस प्रभाव का नाम रश्मिशक्तित्व (Radio Activity) रखा। यूरेनियम और उसके लवणों से निकली हुई रश्मियाँ क्ष किरणों की तरह दिखाई नहीं देती। ये किरणें काँच और धातु की पतली चद्दरों के आर पार चली जाती हैं। बाद की खोजों से यह भी मालूम हुआ कि थोरियम में भी रश्मिशक्तित्व पाया जाता है।

मादाम क्यूरी ने यह मालूम किया कि यूरेनियम के कई खनिजों में शुद्ध यूरेनियम की अपेक्षा चौगुना रश्मिशक्तित्व होता है। १८९८ में श्रीमती और श्रीयुत क्यूरी ने इन खनिजों में एक दूसरे अधिक सक्रिय पदार्थ की उपस्थिति मालूम की। उन्होंने पिच ब्लेंड में जो यूरेनियम का एक

खनिज है, दो सक्रिय तत्वों की खोज की। इन में से एक यूरेनियम की अपेक्षा दस लाख गुना अधिक सक्रिय है। य तत्व पोलोनियम और रेडियम हैं।

मादाम क्यूरी जिसका पूरा नाम श्रीमती मेरी स्क्लोडो-वस्का क्यूरी है, फ्रांस की अग्रगण्य वैज्ञानिक और मानवीय इतिहास में सबसे बड़ी महिला वैज्ञानिक थी। यह सब होते हुए भी आप को जानकर आश्चर्य होगा कि फ्रेंच एकेडमी ने जिनके सदस्य बड़े बड़े विद्वान् होते हैं यह निश्चय किया कि स्त्री चाहे जितनी बुद्धिमान् हो एकेडमी के विद्वतापूर्ण पावन स्थान में प्रवेश नहीं पा सकती।

श्रीमती क्यूरी ने थोड़े ही अर्से में रश्मिशक्तित्व नामक नये विज्ञान की उत्पत्ति की है और इस ओर दूसरे वैज्ञानिक खोज कार्य में जुट गये है। रश्मिशक्तित्व विज्ञान की एक महत्वपूर्ण खोज है। उसका सारा श्रेय मादाम क्यूरी को है। इस खोज कार्य में उन्हें अपने पति पस क्यूरी से बहुत कुछ सहायता मिली। जहाँ पर दूसरे वैज्ञानिक इस ओर असफल प्रयत्न करते रहे वहाँ इस महिला ने विजय प्राप्त की। मादाम क्यूरी ने रेडियम की खोज करके ही अपने काम की समाप्ति नहीं करदी। उसने अपने जीवन के अंतिम दिनों तक खोज कार्य जारी रखा। उस की गणना संसार के महान वैज्ञानिकों में होती है। इससे यह सिद्ध होता है कि विद्वत्ता और बुद्धिमत्ता पुरुषों तक ही परिमित नहीं है। स्त्रियाँ भी अवसर प्राप्त होने पर अनोखे काम कर सकती हैं। यह पुरुष जाति का अत्याचार है कि उन्हें

जान बूझ कर अवसर नहीं दिया जाता।

मादाम क्यूरी का जन्म पोलेंड के वारसा नगर में ७ नवम्बर सन १८६७ को हुआ। उसक पिता डॉ स्क्लोडावस्की उस नगर की शाला के अध्यापक थे। वे एक अच्छे अध्यापक और विद्वान् पुरुष थे। क्यूरी की माता का देहांत बचपन में ही होगया था। मेरी का ध्यान बाल्यावस्था से ही अपने पिता की प्रयोगशाला की ओर आकर्षित हुआ और उसके विज्ञान-प्रेम के कारण उसके पिता उससे बड़ा स्नेह करते थे। क्यूरी को डॉ० स्क्लोडोस्की ने ही पढ़ाया।

पोलेंड के जिस भाग में मेरी रहती थी वह रूस मे शामिल कर लिया गया था। पिता की देशभक्ति के कारण क्यूरी रूस के अत्याचारियों से घृणा करने लगी। मेरी क्रांतिकारियों के दल में शामिल होगई। इस दल की बैठकों में स्वतन्त्रता के उपाय सोचे जाने लगे, कार्यक्रम तैयार किया जाने लगा और स्वतन्त्रता सग्राम की विजय के लिये ईश्वर से प्रार्थनाएँ होने लगीं। अभाग्यवश पुलिस को इसकी कुछ सुराग मिलगई। डा स्क्लोडास्की के कई शिष्य क्रांतिकारी दल के प्रमुख नेता थे।

मेरी ने पोलेंड को छोड़ने का निश्चय किया। उसने एक बार क्रेकोव जो उस वक्त आस्ट्रिया के आधीन था, जाने का इरादा किया पर क्यूरी चाहती थी कि वह एक बड़े शहर में रहे जहाँ एक बड़ा

भारी विश्वविद्यालय हो और वह नगर ऐसा हो जो उसके मस्तिष्क में वारसा की स्मृति को ताजा बनाये रखे। पेरिस ही एक ऐसा नगर था। इसलिये वह वहाँ चली गई। जब वह पेरिस पहुँची तो उसकी जेब खाली थी और वहाँ उसकी पहचान के लोग भी बहुत कम थे। उसने नगर के पूर्वी हिस्से में रहना शुरु किया उसका भोजन बहुत सादा होता था। पढ़ा लिखा कर वह अपना खर्च किसी तरह चला लेती थी। कुछ अर्से बाद उसने सोरबोने में बोतलों का धोने का काम शुरु किया। इस दरिद्रता ने क्यूरी को ऊँचा उठाया।

सोरबोने में भौतिक विज्ञान विभाग के अध्यक्ष गेब्रियल लिपमेन थे। रंगीन फोटोग्राफी में उन्होंने बहुत कुछ काम किया। वे क्यूरी के ज्ञान को देखकर उसकी ओर आकर्षित हुए। उन्होंने और हेनरी पोइनकारे ने मेरी का इतिहास मालूम कर उसके पिता से पत्र व्यवहार किया। इन सबका फल यह हुआ कि मेरी लिपमेन के प्रिय शिष्य पियरे क्यूरी के सिपुर्द करदी गई जिसमें वह विज्ञान का अध्ययन कर सके।

एक प्रभाव शाली तथा अपने काम में व्यस्त विद्वान नवयुवक और एक सुंदर किशोरी के जो उसी तरह के कार्य म रुचि लेती हो, पास पास रहने और अधिकत दिन भर एक दूसरे की ओर देखते रहने से परस्पर प्रेम उत्पन्न होना बिलकुल स्वाभाविक बात है। पियरे अपने एक पत्र में मेरी को लिखता है—यह कितनी बड़ी बात होगी

यदि हम अपने जीवन को एक दूसरे में मिला कर विज्ञान और मनुष्यत्व की भलाई के लिये एक साथ काम करते रहें।" विवाह प्रस्ताव मे विज्ञान और मनुष्यत्व का उल्लेख करना संभवतः ठीक न मालूम हो पर क्यूरी का उद्देश्य बुरा न था। मेरी ने उसके मतलब को समझा, सहानुभूति प्रदर्शित की और सन् १८९५ में पियरे क्यूरी के साथ विवाह कर लिया।

क्यूरी के काम मे मेरी सहायता देती रही और साथ ही उसने अपनी परीक्षा की तैयारी भी की। तीन साल की तैयारी के बाद उसने परीक्षा दी और प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुई। इसके बाद उसने अपना खोज कार्य जारी रखा। ऊपर कहा जा चुका है कि मादाम क्यूरी ने यह मालूम किया कि पिचब्लेंड में से बहुत सारा यूरेनियम निकाल लेने के बाद भी यह निकाले हुए सारे युरनियम से लगभग चौगुना सक्रिय होता है। इससे उसने यह नतीजा निकाला कि पिचब्लेंड में यूरेनियम के अतिरिक्त एक और तत्व है जो उससे कहीं अधिक सक्रिय है। अब पियरे क्यूरी ने मादाम क्यूरी का साथ दिया और दोनों मिल कर इस ओर खोज कार्य में तत्पर हुए।

यह अज्ञात तत्व इस खनिज में यदि होगा तो बहुत ही थोड़े परिमाण में होगा। इस लिए यह जरूरी होता है कि शुरु में बहुत सारा खनिज लिया जाय। आस्ट्रिया की सरकार ने मादाम क्यूरी को एक टन यूरेनियम निकाला हुआ पिचब्लेंड भेज दिया। पिचब्लेंड में कई सारे तत्व

मिलते हैं। इसलिये उन्हें दूर करने में काफी परिश्रम करना पड़ता है।

प्रारंभ में बहुत सारा पिचब्लैंड लिया गया। वह धीरे धीरे कम होते होते इतना रह गया कि परीक्षा नली में आ सके। बिस्मथ वाले अंश में एक बहुत ही तेज रश्मिशक्तिवान् तत्व पाया गया। यह तत्व अलग किया गया और इसका नाम मादाम क्यूरी ने अपनी जन्म-भूमि पोलैंड के नाम पर पोलोनियम रखा। बेरियम वाले अंश में और भी अधिक सक्रिय तत्व पाया गया। मादाम क्यूरी ने इसे अलग किया और इसका नाम रेडियम रखा। यह सन् १९१० की बात है। रेडियम तो बहुत अधिक सक्रिय होता ही है उसका लवण भी यूरेनियम की अपेक्षा बीस पचीस लाख गुना अधिक रश्मिशक्तिवान् होता हैं।

रेडियम एक नया तत्व है। इसके गुण बेरियम के समान होते हैं। क्षारीय मृतिकाओं के वर्ग म इसका स्थान है। रेडियम की खोज के बाद रश्मिशक्तित्व के बारे में जो रेडियम का एक खास गुण है, खोज कार्य करने में रदरफोर्ड, सोडी, रेम्जे और बोल्ट वुड ने काफी भाग लिया है।

रेडियम का लवण यदि कुछ देर तक खुला रहता है तो यह पीला या गुलाबी रंग का हो जाता है। रेडियम से तीन तरह की रश्मियाँ निकलती हैं। इन्हें क्रमशः आल्फा, बीटा और गामा रश्मि कहते हैं। आल्फा रश्मि में हीलियम के परमाणु होते हैं। इसका वेग प्रकाश के

वेग के दसवें हिस्से के बराबर होता है। रेम्जे और सोडी ने यह साबित किया कि रेडियम से हीलियम प्राप्त होता है। आल्फा किरण फोटोग्राफी की प्लेट को प्रभावित करती है और चुम्बकीय क्षेत्र (Magnetic Field) में अपना पथ मोड़ देती है। बीटा रश्मि का आवेश ऋणात्मक होता है इसमें ऋणाणु (Electrons) होते हैं। इसका वेग प्रकाश के वेग के बराबर होता है। एक तेज चुंबकीय क्षेत्र में इसका पथ आल्फा रश्मि के पथ की विपरीत दशा में बदल जाता है। बीटा किरणें धातु की घनी चद्दरों के आर पार चली जाती हैं। गामा रश्मियाँ क्ष-किरण जैसी होती है। इन पर चुंबकीय क्षेत्र का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। ये किरणें सीसे की घनी कई इंच चौड़ी चद्दर के आर पार चली जाती है। जब ये रश्मियाँ हवा द्वारा रोक ली जाती हैं तो उस हवा का तापक्रम बढ़ जाता है। रेडियम से प्रति घंटे उतनी गर्मी निकलती है जिससे उसके बराबर वजन के पानी का तापक्रम ० ° से १०० तक पहुँचादे। आश्चर्य की बात तो यह है कि रेडियम का यह ताप कभी समाप्त नहीं होता।

सन १९०२ में रदर फोर्ड और सोडी ने यह बतलाया कि रेडियम और यूरेनियम से प्राप्त आल्फा किरणें उन तत्वों के परमाणुओं के खंडन हो जाने से निकलती हैं। परमाणुओं के भीतर होने वाले परिवर्तनों का फल रश्मि-शक्तित्व है। हम इन परिवर्तनों को न तो शुरू कर सकते हैं और न उन्हें रोक सकते हैं।

तत्वों के खडन से नये तत्वों का वन जाना विज्ञान के नये क्षेत्र का खुलना है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि परमाणु एसे नहीं है जो अविभक्त हों। सर जे जे टॉमसन के खोज कार्य से पता लगता है कि प्रत्येक परमाणु स्वय एक तरह का सौर मडल है। इसका सूर्य धनात्मक आवेश लिये हुए केंद्रक है और उसे घेरे हुए ऋणाणु सूर्य के चारों ओर घूमते हुए ग्रहों के समान हैं।

थोरियम, यूरेनियम और रेडियम का रश्मिशक्तित्व उनके परमाणुओं के टूटने के कारण है। परमाणुओ के खडन से बहुत अधिक परिमाण में शक्ति प्राप्त होती है। यह शक्ति समव है आगे चल कर काम में ली जा सके।

कीमियागरो का उद्देश्य एक तत्व से दूसरे तत्व को प्राप्त करना था। किसी तरह से निम्न धातुओं को सोने में परिणत करने की उनकी उत्कट अभिलाषा थी। एक तत्व को दूसरे तत्व में परिणत करना अब समव होगया है। रेडियम का खडन होकर नाइटन और हीलियम गैस बनती हैं। नाइटन फिर खंडित होता है जिससे रेडियम क और हीलियम गैस बनती है। रेडियम का खडन नीचे दिया जाता है—

रेडियम—ग्राल्फा किरण

नाइटन—

रेडियम क—

रेडियम ख— बीटा किरण / गामा किरण

बीटा किरण / गामा किरण —रेडियम ग— ग्राल्फा किरण

ग्राल्फा किरण—रेडियम ग १ रेडियम ग२— बीटा किरण / गामा किरण

रेडियम घ रेडियम सीसा २

रेडियम ङ— बीटा किरण / गामा किरण

रेडियम च—ग्राल्फा किरण

रेडियम सीसा १
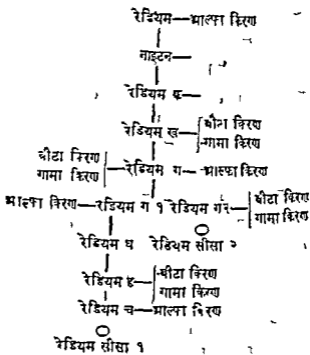
इससे आपको यह मालूम हो जायगा कि रेडियम का खंडन होते होते यह अंत में सीसा बन जाता है। इसी तरह यूरेनियम, एक्टिनियम और थोरियम भी सीसे में परिणत होते हैं। सीसा रेडियम से बिलकुल अलग तत्व है। यद्यपि रेडियम से प्राप्त सीसे का परमाणु भार (Atomic weight) साधारण सीसे के परमाणु भार से अलग होता है फिर भी इन दोनों के गुण एक से होते हैं। ऐसे पदार्थ सम स्थानीय (Isotopes) कहलाते हैं।

रेडियम कैंसर आदि कई रोगों की चिकित्सा में काम आता है। रेडियम का चर्म पर विचित्र सा असर होता है। यदि रेडियम का लवण कुछ मिनट तक चर्म के सपर्क में रह जाय तो चमड़ी पर बहुत दर्दनाक उभार उठ आते हैं। रेडियम को चर्म के नजदीक लाने से भी ततुओं को हानि पहुँचती है। रेडियम के इसी गुण या अवगुण के कारण उसका उपयोग कैंसर रोग की चिकित्सा में, किया जाता है। रेडियम की किरणों से नील एव पर्णहरीन (Chlorophyll) का रग नष्ट हो जाता है।

सन् १९०३ में मादाम क्यूरी ने अपनी खोज का विवरण थीसिस के रूप में डाक्टर आफ साइंस की उपाधि के लिये प्रकाशित किया। इस ग्रथ का बड़े हर्ष के साथ स्वागत किया गया। मादाम क्यूरी की जिसे लोग बिलकुल नहीं जानते थे, ख्याति सारे ससार में फैल गई। यदि यही क्यूरी गेलिलियो के समय में हुई होती तो वह जादूगरनी समझी जाती और उसके लिये उसे दड दिया जाता। उसी साल क्यूरी दपति लंदन गये और पियरे क्यूरी ने रेडियम पर व्याख्यान दिया। रायल सोसाइटी ने उन्हें डेवी मेडल प्रदान किया। उसी साल क्यूरी दपति और बेकरल को नोबल पुरस्कार मिला।

सन् १९०४ में मादाम क्यूरी सोरबोने में प्रयोग शाला की अध्यक्षा नियुक्त हुई। इसके बाद दो साल तक क्यूरी दपति सुखपूर्वक साथ साथ काम करते रहे।

सन् १९०६ के शुरु मे अपने प्रिय मित्र पेरिन के साथ भोजन व गपशप करके पियरे क्यूरी घर की तरफ रवाना हुआ। रास्ते में एक गाड़ी से दुर्घटना हो जाने स उसका प्राणान्त होगया। इस दुर्घटना ने मादाम क्यूरी को बहुत घायल कर दिया। कई महीनों तक ऐसी अवस्था में रही कि लोगों ने उसके जीवन की आशा छोड़ दी। धीरे धीरे उसका दुःख कुछ कम हुआ। उसके दो बच्चा और विज्ञान ने उसकी जान बचाई। इन्हीं के लिये उसने अपना जीवन अर्पण किया।

मादाम क्यूरी का रेडियम के संबंध में खोज कार्य चलता रहा। सन् १९१० में वह अपने सहायक देवीर्न के सहयोग से रेडियम को अलग करने और उसके गुण मालूम करने में सफल प्रयास हुई। इसी साल उसने रेडियम पर अपनी पुस्तक Traite' de Radioactivite') प्रकाशित की।

सन् १९११ में मादाम क्यूरी को फिर नोबल पुरस्कार मिला। अभी तक मादाम क्यूरी ही एक व्यक्ति है जिसने नोबल पुरस्कार दो बार प्राप्त किया है। इसीसे यह अंदाज किया जा सकता है कि उसने कितना महत्वपूर्ण खोज कार्य किया है। नोबल पुरस्कार देते समय स्वेडिश रायल एकेडमी के प्रेजीडेन्ट न ये शब्द कहे— रेडियम और पोलोनियम की खोज और रेडियम के प्रथक्करण एवं उसके गुणों के अध्ययन से आपने विज्ञान की जो अनुपम सेवा की है उसके लिये इस साल

एकेडमी ने आपको रसायनशास्त्र का नोवल पुरस्कार देने का निश्चय किया है। बारह साल पहले नोवल पुरस्कार के आरंभ होने से आज तक यह पहला अवसर है कि यह सम्मान ऐसे व्यक्ति को मिले जो पहले एक बार इस पुरस्कार को पा चुका हो। श्रीमती! मैं चाहता हूँ कि आप इस तरह से यह देखें कि हमारी एकेडमी आपकी खोजों को कितना महत्व देती है—

इसी साल फ्रेंच एकेडमी ने मादाम क्यूरी को अपना सदस्य बनाने से इनकार कर कलंक का टीका अपने सर पर लिया। फ्रेंच एकेडमी के अधिकारियों ने मादाम क्यूरी का नाम सदस्य होने वालों की श्रेणी में सबसे ऊपर रखा। जब यह सूची एकेडमी की त्रैमासिक बैठक में डेढ़ सौ सदस्यों के सामने उपस्थित की गई तो यह प्रश्न छिड़ा कि कोई स्त्री एकेडमी की सदस्य हो सकती है या नहीं? स्त्रियों के सदस्य होने के पक्ष में ५२ और विपक्ष में ९० सम्मतियाँ प्राप्त हुईं। इस लिये फ्रेंच एकेडमी ने पुरानी रीति का अनुसरण करते हुए मादाम क्यूरी को सदस्य बनाना अस्वीकार कर दिया। फ्रेंच एकेडमी का यह कार्य कहाँ तक युक्तिसंगत है इस पर कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं मालूम होती। विज्ञान का द्वार सबके लिये खुला हुआ होना चाहिये।

पेरिस में रेडियम इन्स्टिट्यूट के बन जाने पर मादाम क्यूरी उसकी अध्यक्षा बनाई गई। इस इन्स्टिट्यूट में दो विभाग हैं। एक का नाम क्यूरी प्रयोगशाला है। इस

में रश्मिशक्तिवान् तत्वों के विषय में खोज कार्य होता है। दूसरा विभाग पासच्यूर-प्रयोगशाला कहलाती है। इसमें रश्मिशक्तिवान् पदार्थों का औषध विज्ञान में उपयोग किया जाता है और इस बारे में खोज कार्य भी होता है। पियरे क्यूरी के नाम से गली का नामकरण किया गया है।

मादाम क्यूरी को अपने जीवन में काफी अर्से तक धनाभाव बना रहा। विवाह हो जाने के पश्चात् क्यूरी दंपति की संयुक्त आमदनी इतनी ही थी कि वे साधारण जीवन भी कठिनता से व्यतीत कर सकें। बाद में अवस्था अच्छी हो जाने पर क्यूरी दंपति ने कुछ जाय दाद भी खरीदी।

मादाम क्यूरी का देहांत सेवोय नगर में १९३४ के ग्रीष्म काल में हो गया। संसार की एक महान् वैज्ञानिक आत्मा उठ गई।

क्या नत्रजन अनावश्यक है ?

नत्रजन स्वतन्त्र रूप से वायुमंडल में पाया जाता है। वायुमंडल के आयतन का ४|५ भाग नत्रजन है। इसके अतिरिक्त नत्रजन कुछ अंशों में ज्वालामुखी पर्वत के मुहानेसे निकलने वाली और कोयले को जलाने पर उत्पन्न होने वाली गैस में पाया जाता है। नत्रजन के यौगिक बहुत अधिक परिमाण में मिलते हैं। उद्जन (Hydrogen) के साथ मिल कर यह अमोनिया और उद्जन तथा ओषजन के साथ मिलने का नत्रस और नत्रिक अम्ल (Nitrous & Nitric acids) बनाता है। नत्रिकाम्ल के लवण नत्रेत (Nitrates) बहुत काफी परिमाण में पाये जाते हैं। चिली प्रदेश में सैंधव नत्रेत (Sodium nitrate) जिसे शोरा कहते हैं, काफी मात्रा में मिलता है। प्राणियों और वृक्षों में पाये जाने वाले प्रोटीन में लगभग १६ प्रतिशत नत्रजन होता है। नत्रजन के अनेक उपयोग हैं। नत्रेतों

और अमोनियम गधेत का उपयोग पौधोंको खाद पहुँचाने में किया जाता है। पौधों को नत्रजन के यौगिकों के अलावा फास्फरस और पाशुज Potassium) के यौगिकों की भी आवश्यकता होती है। बारूद, नत्रो मधुरीन (Nitro glycerine) आग्नेय तूल (Gun cotton, त्रिनत्रो टोलीन एवं प्रधनिकाम्ल (Picric Acid) आदि विस्फोटक पदार्थों, विपरिज्वरिन (Antipyrine) औषध, कुनैन और मोरफीन आदि क्षारोद (Alkaloids), नील, एनिलीन आदि रंगों में नत्रजन आवश्यक रूप में होता है। आप को संभवत यह जान कर आश्चर्य होगा कि स्वतन्त्र रूप में नत्रजन एक निष्क्रिय पदार्थ है पर इसके यौगिक अनेक और विभिन्न गुणवाले होते हैं और रासायनिक प्रतिक्रियाओं में सक्रिय भाग लेते हैं।

नत्रिकाम्ल के लवणों का, जो नत्रेत कहलाते हैं, उपयोग पौधों को खाद पहुँचाने में किया जाता है। यह नत्रिकाम्ल चिली शोरे से बनाया जाता है। चिली में यद्यपि शोरे की सचित राशि काफी मात्रा में है फिर भी यह आशंका थी कि यह जल्दी ही समाप्त हो जायगी। इसलिये यह आवश्यक हो गया कि नत्रजन के यौगिक तैयार करने के लिये वायुमडल में वर्तमान नत्रजन का उपयोग किया जाय। इस तरह से नत्रजन के यौगिक कृत्रिम रीति से तैयार किये जाने लगे। यह अंदाज किया जाता है कि शोरे की सचित राशि अभी लगभग २०० वर्ष तक और समाप्त नहीं होगी। नत्रजन के कृत्रिम

संग्रहण (Fixation) से लगभग ४५ प्रतिशत नत्रजन के यौगिक बनाये जाते हैं। वायुमंडल मे लगभग ४,००० अरब टन नत्रजन मौजूद है।

आजकल निम्नलिखित तीन विधियों से नत्रजन का कृत्रिम संग्रहण किया जाता है:—

१ श्यामेमिद विधि (Cyanide Process)— बेरियम या खटिकम (Calcium) के कर्बिद (Carbide) नत्रजन से मिलकर बेरियम या खटिकम श्यामेमिद बनाते हैं। यह नाइट्रोलिम के नाम से मिलता है।

२ नत्रिकाम्ल विधि (Nitric Acid Process — इस विधि में नत्रजन और ओषजन का बिजली के आर्क से संयोग होकर नत्रजन परोषिद बनता है। नत्रजन परोषिद को ठंडा करके पानी में मिलाने पर नत्रिकाम्ल और नत्रस अम्ल बनता है। नत्रस अम्ल का ओषदीकरण या अवकरण (Reduction) होने से नत्रिकाम्ल, पानी और नत्रिक ओषिद बनते हैं। यह नत्रिक ओषिद ओषजन के सपर्क में आने पर नत्रजन परोषिद मे परिणत हो जाता है और अन्ततोगत्वा नत्रिकाम्ल का निर्माण करता है।

३ अमोनिया का संश्लेषण एव ओषदीकरण (Synthesis and oxidation of Ammonia)— नत्रजन और उद्‌जन जब लोहे या मैंगनीज जैसे उत्प्रेरकों (Catalyst) के संपर्क में आते हैं तो अमोनिया का निर्माण करते हैं। बाद में यह अमोनिया ओषदीकरण द्वारा

नत्रिकाम्ल में परिणत कर दिया जाता है। सन् १९१६ में जर्मनी में नत्रजन संग्रहण की इस विधि से लगभग ४ लाख टन यौगिक तैयार किये गये थे।

इसके अतिरिक्त प्राकृतिक विधि से भी नत्रजन का संग्रहण होता है। मूत्रिया (Urea) के रूप में प्राणियों की देह से नत्रजन बाहर निकलकर जमीन में पहुँचता है। एक दिन में मनुष्य चालीस हजार टन मूत्रिया बनाते हैं। इससे अंदाजा लगाया जा सकता है कि इससे कितना नत्रजन मिल सकता है। जमीन के अंदर मूत्रिया से अमोनियम कार्बनेत बनता है। यह अमोनियम कार्बनेत मिट्टी में पाये जाने वाले उपयोगी कीटाणुओं द्वारा नेत्रेतों में परिणत किया जाता है। मूत्रिया से प्राप्त होने वाला यह नत्रजन अधिकतर नालों द्वारा नदियों व समुद्र में बहा दिया जाता है और इस तरह से स्थानीय जमीन इतने सारे नत्रजन से वंचित रह जाती है।

अमोनिया—नत्रजन और उदजन का सबसे अधिक महत्वपूर्ण यौगिक अमोनिया है। जब अस्थियों, पंख, कोयला, सींग आदि जीवनी वस्तुएँ बंद बर्तनों में जलाई जाती हैं तो उनमें विद्यमान नत्रजन उदजन से मिलकर अमोनिया बनाता है। अमोनिया के मुख्य लवण नौसादर, अमोनियम गंधेत और नत्रेत हैं।

अमोनिया एक रंगविहीन क्षारीय गैस है। इसकी गंध बड़ी तेज होती है। इसे यदि अकस्मात् सूँघ लिया जाय तो आँखों में आँसू आ जाते हैं। यह गैस पानी में बड़ी घुलन

शील है। कोयले में वर्तमान नत्रजन कई विषम यौगिकों के रूप में मिलता है। जब कोयले को गर्म किया जाता है तो ये यौगिक खंडित हो जाते हैं। कोयले को खुले बर्तन में गर्म करने पर नत्रजन स्वतंत्र रूप में अलग होकर वायुमंडल में मिल जाता है। इसे बंद बर्तनों में गर्म करने पर नत्रजन उदजन से मिलकर अमोनिया बनाता है। कोयले में नत्रजन लगभग १ ५ प्रतिशत होता है। कोयले की गैस बनाने के लिये काफी कोयला खर्च होता है और उससे अमोनियम गंधेत भी काफी मात्रा में बनता है।

पहले जब कोयले से गैस तैयार की जाती थी तो लोगों को यह मालूम था कि इस से अमोनिया मिलता है। यही नहीं गैस व्यवसाइयों ने उसे बेच कर रुपये कमाने का भी विचार किया पर उनकी आशा निराशा में परिणत हुई। उस वक्त बहुत कम लोगों को अमोनिया की जरूरत पड़ती थी और जितनी माग होती थी उससे कहीं अधिक अमोनिया तैयार होता था। इस लिये लोगों ने अमोनिया को नदियों और समुद्रों में जहाँ सुविधा होती, बहाना शुरु किया। अमोनिया की गध आपत्तिजनक होने के कारण बहुत से लोगों ने इस बारे में शिकायतें कीं। इससे लोगों को कोयले की गैस के बारे में भी बुरे खयाल पैदा हो गये। अत यह एक समस्या उत्पन्न होगई कि अमोनिया का निराकरण कैसे किया जाय।

आजकल अमोनिया एक बड़ा उपयोगी पदार्थ समझा जाता है और गैस के व्यवसाइयों के लिये आमदनी का

इधर उधर ले जाया जा सकता है। यह काँच के काग वाली बोतल में नहीं रखा जा सकता। इसके भड़कने पर लगभग १४०० गुनी गैस उत्पन्न होती है। मोटर में पेट्रोल हवा से मिलने पर भड़क उठता है और पिस्टन को चलाता है।

बारूद में शोरा, कोयला और गंधक होते हैं। शोरा और कोयला आवश्यक पदार्थ हैं। गंधक बहुत थोड़ी मात्रा में होता है। यह विस्फोटन की तेज़ी को बढ़ाता है। शोरे से मिलने पर इसका ओषदी-करण (Oxidation) होता है जिससे विस्फोटन के समय पैदा होने वाली गर्मी बढ़ती है। बारूद में आग पकड़ने वाले पदार्थ कोयला और गंधक हैं। कोयला और शोरा एक साथ गर्म किये जाने पर भड़क उठते हैं। बारूद को जलाने पर कार्बन द्विओषिद (Carbon dioxide), कार्बन एकोषिद (Corbon monoxide) और नेत्रजन बहुत अधिक मात्रा में बनते हैं। बारूद में शोरे के स्थान पर अमोनियम नत्रेत का उपयोग भी किया जाता है। अमोनल में अमोनियम नत्रेत और एल्यूमी-नियम का चूरा होता है। इसमें थोड़ा सा कोयला भी डाल दिया जाता है। चूंकि यह विस्फोटक पदार्थ हवा में आर्द्रता खींच लेता है इस पर एक ऐसी परत चढ़ा दी जाती है जिससे पानी अंदर न जा सके।

बारूद यौगिक न होकर मिश्रण है। आजकल ऐसे विस्फोटक पदार्थ भी बनाये जाते हैं जो यौगिक होते हैं।

ऐसे पदार्थों में नत्रो मधुरीन, पिक्रिकाम्ल, त्रिनत्रो टोलीन और आग्नेय तूल (gun cotton) उल्लेखनीय हैं। मधुरीन कार्बोलिक अम्ल, टोलीन और रुई पर जब शोरे के तेजाब की प्रतिक्रिया होती है तो क्रमशः उपर्युक्त पदार्थ बनते हैं। चूंकि नत्रिकाम्ल में ओषजन की मात्रा काफी होती है इन विस्फोटक पदार्थों में भी ओषजन का काफी अधिक अंश आ जाता है। रुई एक निर्दोष चीज है पर शोरे के तेजाब के संपर्क में आने पर यह एक भयकर विस्फोटक पदार्थ बन जाती है। इसे तैयार करने के लिये इस बात की सावधानी रखने की आवश्यकता है कि रुई बिलकुल साफ हो और उस पर कोई धब्बा न हो। जब उसे नत्रिकाम्ल में डुबोया जाय तो तापक्रम बहुत ही कम रहना चाहिये और फिर रुई पर बचे हुए तेजाब को हटाने के लिये उसे अच्छी तरह धो डालना चाहिये। इन बातों में असावधानी करने से इसके भड़क उठने का पूरा खतरा रहता है। आग्नेय तूल बारूद की अपेक्षा कहीं अधिक जल्दी जल उठता है। इन विस्फोटक पदार्थों को जलाने के लिये भड़काने वाले (Detonators) पदार्थों की आवश्यकता होती है। पारद विस्फुटेत एक ऐसा ही भडकाने वाला पदार्थ है। भड़काने वाले पदार्थ से यदि उसके पास कुछ सूखी चीज हो तो गीले आग्नेय तूल का विस्फोटन हो जाता है। आग्नेय तूल को हमेशा आर्द्र अवस्था में रखा जाता है।

नत्रो मधुरीन जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है आग्नेय तूल से कहीं भयंकर विस्फोटक पदार्थ है। इसको

इधर उधर करने में काफी सावधानी की आवश्यकता होती है। जहाँ नत्रो मधुरीन बनाया जाता है वहाँ पर काम करने वालों को खास तरह के वस्त्र पहनने पड़ते हैं। किसी व्यक्ति के पास लोहे की बनी कोई चीज नहीं रखने दी जाती। बाहर भेजने से पहले इसे दूसरे रूप में बदल देते हैं। इन में डायनेमाइट सबसे साधारण है। कीसलगुर एक न पिघलने वाली मिट्टी है। यह अपने में तिगुने नत्रोमधुरीन को सोख लेती है। इन दोनों के सयोग से बने हुए पदार्थ को डायनेमाइट कहते हैं। डायनेमाइट इतना खतरनाक नहीं होता और इधर उधर उठा कर रखा जा सकता है। पारद विस्फुटेत के साथ जलने पर डायनेमाइट का बड़ा प्रचंड विस्फोटन होता है। शिलाखण्डों को तोड़ने के लिये डायनेमाइट को उन पर रख कर उस पर कुछ मिट्टी डालदी जाती है। इसके बाद विस्फोटन किया जाता है।

त्रिनत्रो टोलीन सबसे प्रचंड विस्फोटक पदार्थ है। इसको भड़काने के लिये पारद विस्फुटेत का प्रयोग किया जाता है।

नत्रजन का एक ओषिद नत्रस ओषिद (Nitrous Oxide) है। अमोनियम नत्रेत को गर्म करने पर यह ओषिद बनता है। इसको हास्योत्पादक गैस भी कहते हैं। इसे सूघने पर हँसी को रोकना असंभव सा हो जाता है। हंफ्री डेवी सूघने के बाद प्रयोगशाला में पागल की तरह नाचने लगे। इस गैस का प्रभाव विभिन्न

व्यक्तियों पर अलग अलग होता है। इसे अधिक मात्रा में सूंघने पर मनुष्य बेहोश भी हो जाता है। मामूली शस्त्रोपचार के लिये इस गैस का प्रयोग किया जाता है।

धातुओं के उपयोग

बहुत कम धातुएँ स्वतन्त्र रूप में पाई जाती हैं। स्वतन्त्र रूप में पाई जाने वाली धातुएँ श्रेष्ठ धातु कहलाती हैं। परऱौप्य, सोना और चाँदी की गणना श्रेष्ठ धातुओं में की जाती है। इन पर तेजाब का असर आसानी से नहीं होता और न इन पर कोई दाग लगता है। इन्हीं गुणों के कारण इन धातुओं का उपयोग सिक्के व आभूषण बनाने में किया जाता है। दूसरी धातुएँ कच्ची धातु (Oore) के रूप में मिलती हैं। इनसे धातुओं का विभिन्न विधियों से निष्कर्षण किया जाता है।

पारे को छोड़कर बाकी सब धातुएँ ठोस होता है। धातुएँ अधिकतर वजन में भारी होती हैं पर सैंधवियम और पाशुज आदि कई धातुएँ पानी से हलकी भी होती हैं।

श्रेष्ठ धातुएँ—परऱौप्य (Platinum) एक बहुत ही

कीमती धातु है । परर्रौप्य वर्ग में इरिडियम, ओस्मियम, रूथेनियम, रोडियम, पैलेडियम आदि धातुएँ हैं । फाउन्टेन पेन के सोने की निब की नोक पर परर्रौप्य वर्ग की एक मिश्रधातु इरिडियम और ओस्मियम के मिश्रण का उपयोग किया जाता है । यह निब को घिसने से बचाता है । परर्रौप्य धातु के बने उपकरणों का प्रयोग रसायन की प्रयोगशालाओं में किया जाता है । परर्रौप्य धातु केवल अम्लराज (Agua regia) जिसमें तीन भाग नमक का तेजाब और एक भाग शोरे का तेजाब होता है, घुलती है । यह तांबे, चाँदी और सोने से अधिक कठोर होती है । उसका और काँच का प्रसार एक होने के कारण इसके तार काँच के साथ एकीभूत किये जा सकते हैं । चूँकि इसकी माग दिनोंदिन बढ़ रही है और निकास सीमित है यह दिनों दिन महँगी होती जाती है ।

सोने का उपयोग अधिकतर गहने बनाने में किया जाता है । यह प्रकृति में स्वतंत्र रूप में पाया जाता है । अपने मनामोहक रंग और चमक के कारण यह पहली धातु थी जिसने मनुष्यों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया । सोना सूर्य का चिन्ह समझा जाता है । इस पर हवा, पानी और गर्मी का असर नहीं होता । यह परर्रौप्य की तरह केवल अम्लराज में घुलता है । यह सबसे अधिक घनवर्धनीय (Ductile) और तन्य (Malleable) धातुओं में से है । इसकी ०.००००००४

इच मोटाई की चद्दरें बनाई जा चुकी हैं। भारतवर्ष में सोने को बहुत अधिक महत्व प्रदान किया गया है। यहाँ तक कि उसमें सारे गुणों का समावेश कर दिया गया है—सर्वे गुणा काचनमाश्रयते।

शुद्ध सोना सिक्कों के लिये बहुत नरम होता है इसलिये इसके साथ ताबा या चादी मिलाई जाती है। ताबे के मिलने से सोने का रग लाल और चाँदी के मिलने से कुछ पीला हो जाता है। मिश्रणों में सोने का परिमाण केरट में व्यक्त किया जाता है। इसमें सौ भाग चौबीस हिस्सों में बराबर विभाजित किये जाते हैं। खालिस सोना २४ केरट का होता है। प्रमाणित मिश्रणों में सोने का परिमाण २२, १८, १५, १२ और ९ केरट होता है। ब्रिटिश स्टरलिंग में २२ केरट सोना होता है। अमेरिका के डालर में ९० प्रतिशत सोना और १० प्रतिशत ताबा होता है।

चाँदी चन्द्रमा का प्रतीक समझी जाती है। चाँदी का नामकरण चाँद से हुआ है। यह धातु भी बहुत ही घननर्धनीय और तन्य है। चाँदी ९५८ शताश ग्रेड तापक्रम पर पिघलती है।

यह हवा और पानी से प्रभावित नहीं होती। यदि वायुमंडल में उद्जन हरिद (Hydrochloric Acid) या उद्जन गंधिद (Hydrogen Sulphide) मौजूद हो तो चमक मारी जाती है और इसपर काला नीला पीला दाग पड़ जाता है। चाँदी शोरे के तेजाब में

घुलनशील है। चाँदी का उपयोग गहने और सिक्कों के बनाने में किया जाता है। निर्दिष्ट स्टरलिंग चाँदी में ९२.५ प्रतिशत चाँदी और ७.५ प्रतिशत ताम्रा होता है। रुपये में ५० प्रतिशत चाँदी ४१ प्रतिशत ताम्रा और ९ प्रतिशत निकल धातु होती है।

उपयोगी धातुएँ लोहा— वर्तमान युग लौह युग समझा जाता है। लोहा सबसे अधिक महत्वपूर्ण और उपयोगी धातु है। लोहा प्रकृति में स्वतन्त्र रूप में बहुत कम पाया जाता है। उल्काओं (Meteorites) में निकल के साथ लोहा मिलता है। निकल के मिले हुए होने से उल्का में पाये जाने वाले लोहे पर आसानी से जग नहीं चढ़ता।

भारतवर्ष में लोहे का सबसे बड़ा कारखाना जमशेदपुर में टाटा आयरन एंड स्टील वर्क्स है। लोहे और फौलाद में सबसे बड़ा अवगुण यह है कि हवा और पानी की उपस्थिति में उन पर जंग चढ़ जाता है। लोहा ढलवा (Cast Iron) और पिटवा (Wrought I on) दो तरह का होता है। ढलवे लोहे में कार्बन की मात्रा पिटवे लोहे से अधिक होती है। पिटवे लोहे को गला कर जोड़ सकते हैं पर ढलवे लोहे को नहीं। फौलाद में कार्बन की मात्रा पिटवे लोहे से अधिक और ढलवे लोहे में कम होती है। लोहा हलके तेजाबों में घुल जाता है। समाहृत नत्रिकाम्ल (Concentrated Nitric Aci) में लोहा नहीं घुलता। इस में डाले जाने पर यह अकर्मण्य लोहे (Pa ive Iron) में

ये वर्तन हलके और सुन्दर होते हैं। पर उन्हें अच्छी तरह साफ करना कुछ कठिन होता है।

क्षारीय धातुओं का उपयोग साबुन बनाने में किया जाता है। इन्हें चूने के साथ उबालने से जो यौगिक बनता है। वह बड़ा ही दाहक होता है। इसी लिये इसे दाहक सोडा या दाहक पोटाश कहते हैं।

खटिकम धातु क्षारिय मृत्तिकाओं में शुमार होती है। चूना खटिकम ओषिद होता है। चूने पर पानी डालने से ताप पैदा होता है और भाप बनती है। पानी से मिलकर चूने का चूरा बन जाता है। यह खटिकम उदौषिद (Calcium Hydroxide होता है। इसे बुझा हुआ चूना कहते हैं। सीमेंट के बनाने में चूने का पत्थर, मीठा चूना Gypsum/ और बाक्साइट का उपयोग किया जाता है। खटिकम कर्बिद नत्रजन से मिलकर खटिकम श्यामेमिद बनाती है जिसका उपयोग खाद के रूप में होता है। धूल के साथ सैंधवियम कर्बनेत या खटिकम कार्बनेत को मिला कर गर्म करने से काँच बनता है। कठोर काँच के निर्माण में पांशुज कार्बनेत का प्रयोग किया जाता है। यह काँच लेंस और प्रयोगशाला के लिये यंत्रों के बनाने में काम आता है। साधारण काँच में १०० भाग धूल, २५-४० भाग सोडा और १५ भाग चूने का पत्थर होता है। द्रवणांक तक पहुँचने पर काँच नम्र हो जाता है। तब यह इच्छित आकार में फूंका, ढाला एवं मोड़ा जा सकता है। जीना काँच में क्षार कम होती है और

ल्यूमीना का परिमाण अधिक होता है। काँच को रंगीन बनाने के लिये उसमें तांबा, क्रोमियम, केडमियम, मेगनीज, कोबल्ट यूरेनियम आदि के लवण मिला दिये जाते हैं।

सीसे का उपयोग पानी के नलों के बनाने में किया जाता है। यह धातु बहुत नम्र होती है। इसी लिये इसे उँगली से खुरच भी सकते हैं। शीशे के सारे लवण हानिकारक एवं विषैले होते हैं। इसके विषैले प्रभाव से बचने के लिये नल में जाने वाले पानी को चूने या खड़िया मिट्टी में छान लेते हैं। इससे पानी में कार्बनेत घुल जाता है। यह कार्बनेत सीसे की सतह को पानी में घुलने नहीं देता।

जस्ते का उपयोग बेटरियों में किया जाता है और लोहे पर इसकी परत चढ़ाई जाती है। इससे उस पर जंग नहीं चढ़ने पाता। पारा एक उपयोगी धातु है। इसे दवाइयों के बनाने के काम में लेते हैं। पारे से पारद विस्फुटेत नामक विस्फोटक पदार्थ भी तैयार किया जाता है। पारे को तापमापक एवं वायुदाबमापक यंत्र में भरते हैं।

क्रोमियम को फौलाद के साथ मिलाकर उससे चाकू, छुरा, नश्तर आदि बनाते हैं। निकल को भी फौलाद के साथ मिलाते हैं। इसके अतिरिक्त इसके सिक्के भी बनाये जाते हैं। इन सिक्कों में निकल २५ प्रतिशत और ताँबा ७५ प्रतिशत होता है।

टंगस्टन का उपयोग जैसा अन्यत्र कहा जा

चुका है बिजली के बल्बों में किया जाता है। टंगस्टन धातु ३४०० शताशमेड पर पिघलती है। इससे बहुत ही महीन तार खींचे जा सकते हैं।

मिश्र धातु—एक धातु की कमी पूरी करने के लिये उसमें दूसरी धातु मिला दी जाती है। ऐसी धातुएँ मिश्र धातु कहलाती हैं। इनमें पीतल, काँच, जर्मन सिलवर बरतानिया धातु आदि मुख्य हैं। मिश्र धातु के लिये यह आवश्यक नहीं है कि इसमें मौजूद दोनों धातुएँ परस्पर घुल मिल जायँ। लोहे को जंग से बचाने के लिये उस पर जस्ते या टीन का घोल चढ़ा दिया जाता है। पिन बनाने के लिये पीतल के तार को टिन के किसी लवण के घोल में डुबो दिया दिया जाता है जिससे उस पर टिन की एक परत चढ़ जाती है। विद्युत् रंजन से धातु की बनी किसी वस्तु पर सोने, चाँदी, निकल, क्रोमियम, तांबे आदि का झोल चढ़ाया जा सकता है। चम्मच, काँटे, वगैरह जर्मन सिलवर या बरतानिया धातु के बनाये जाते हैं। इनको अम्लीय द्रवों के असर से बचाने के लिये इन पर चाँदी का झोल चढ़ा दिया जाता है।

शुद्ध तांबा नरम होता है। उसे सिक्कों के लिये उपयुक्त बनाने के लिये उसमें ५ प्रतिशत टिन मिला दिया जाता है। यद्यपि टिन भी एक नरम धातु है पर तांबे और टिन के मिलने से बनने वाली मिश्र धातु कठोर होती है। मिश्रधातुएँ जिन धातुओं के मिलने से बनती हैं उन

धातुओं से कम तापक्रम पर पिघलती हैं।

चाँदी और जस्ता सफेद रग की धातुएँ हैं पर उनको मिला देने पर गुलाबी रंग की मिश्रधातु बन जाती है। सोने और एल्यूमीनियम की मिश्र-धातु बैंजनी रग की होती है।

पीतल में तावा और जस्ता होता है। इसमें दो भाग तांबा और एक भाग जस्ता होता है। पीतल का उपयोग बर्तनों के बनाने में किया जाता है। जर्मन सिलवर में तावा जस्ता और निकल होता है। काँसे में ९० प्रतिशत तावा और १० प्रतिशत टिन होता है। काँसे का उपयोग मूर्त्तियों के बनाने में किया जाता है। बरतानिया धातु टिन और एटिमनी का मिश्रण है।

आपको यह जान कर आश्चर्य होगा कि सीसे, टिन, बिस्मथ और केडमियम का मिश्रण केवल गर्म पानी में ही पिघल जाता है यद्यपि इन धातुओं का द्रवणांक क्रमश ३२७°, २३२°, २७१, और ३२१ शताशग्रेड है।

———

कोयले की करामात–१

कार्बन हमारे दैनिक जीवन म काम आने वाला एक बहुत ही महत्वपूर्ण तत्व है। यह तत्व जितने यौगिक बनाता है उतने अधिक यौगिक किसी और तत्व के नहीं हैं। इसके लगभग दो लाख यौगिक मालूम किये जा चुके हैं। यह संख्या दिन प्रति दिन बढ़ती जाती है। कार्बन स्वयं प्रकृति में तीन रूपों में पाया जाता है– हीरा, ग्रेफाइट और कोयला। हीरा और ग्रेफाइट खनिजों क रूप में पाये जाते हैं। कोयला अमणिभ (Amorphous) कार्बन का खनिज है।

कार्बन और उद्‌जन के यौगिक उद्‌कर्बन (Hydro-Carbons) कहलाते हैं। इनकी संख्या अगणित है। इनके मिश्रण पेट्रोल और बिटूमिनस कोयल में पाय जाते हैं। कार्बन द्विओषिद स्वतन्त्र रूप में वायुमंडल में मिलता है और इसके यौगिक कार्बनेत कहलाते हैं।

इनमें खटिकम कार्बनेत (खड़िया मिट्टी, चूना सगमर्मर आदि) और मगनेसियम कार्बनेत उल्लेखनीय हैं। फौलाद में लोहे और कार्बन का मिश्रण होता है।

हीरा—ऊपर कहा जा चुका है कि हीरा कार्बन का एक रूप है। यह एक बहुमूल्य पदार्थ है और इसकी कीमत लाखों में आकी जाती है। रसायनशास्त्र की दृष्टि में हीरे, ग्रेफाइट और कोयले में कोई अंतर नहीं है। तीनों को जलाने पर कार्बन द्विओषिद बनता है। हीरे को जलाकर कोयले में परिणत किया जा सकता है। इसी तरह कोयले व ग्रेफाइट को जलाकर हम हीरा बना सकते हैं।

कृत्रिम हीरे के बनाने का प्रयत्न बहुतों ने किया पर वे सब असफल रहे। सन १८९३ में हेनरी मोइसन ने सर्व प्रथम कोयले से हीरे प्राप्त किये। मोइसन का पूरा नाम फर्डिनड फ्रेडरिक हेनरी मोइसन था। इसका जन्म पेरिस में सन् १८५२ में हुआ। मोइसन का रसायन शास्त्र में बड़ा अनुराग था। मोइसन ने सन् १८६५ में मीक्स नगर की म्यूनिसिपल पाठशाला में नाम लिखाया। वहां का अध्यापक जेम्स बड़ा योग्य पुरुष था। उसे मोइसन में प्रतिमा मालूम हुई अत उसने उसे अलग से पढ़ाना भी प्रारम्भ किया। आर्थिक कठिनाइयों के कारण मोइसन को सन् १८७० में बिना परीक्षा दिये पाठशाला से विदा लेनी पड़ी। इससे उसके अध्यापक जेम्स को बड़ी निराशा हुई। मोइसन ने पेरिस पहुँच कर एक औषध विक्रेता के यहां

अप्रेंटिस के तौर पर काम करना प्रारंभ किया। यहाँ पर मोइसन ने एक मनुष्य को जिसने संखिया खा लिया था, मृत्यु के मुख से बचाकर प्रकृति पर अपनी प्रथम विजय प्राप्त की। यहाँ मोइसन को अध्ययन के लिये बहुत कम समय मिल पाता था। औषध विक्रेता के पद पर पहुँचने के लिये उसे कई परीक्षाएँ पास करने की आवश्यकता थी। यहाँ की तरह हर कोई औषध विक्रेता नहीं बन सकता था। उसे काफी अरसे तक शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती थी। अतः मोइसन ने सन् १८७२ में यह जगह छोड़ दी।

सन १८७७ में मोइसन ने उपाधि परीक्षा पास की। इस वक्त मोइसन की आर्थिक स्थिति बहुत ही खराब थी। मोइसन की यह कामना थी कि वह रसायनवेत्ता बनकर ३०० फ्रैंक प्रति मास अर्जन कर सके। इसी से अंदाज लगाया जा सकता है कि वह कितना गरीब था।

मोइसन साहित्य-प्रेमी भी था। उसने एक नाटक भी लिखा जो दुर्भाग्य या सौभाग्यवश खेला न जा सका। यदि वह खेला जाता तो संभव है मोइसन रसायनवेत्ता न बन पाता।

मोइसन का अध्यापक देहरें जीव रसायनवेत्ता था। इसलिये यह स्वाभाविक था कि मोइसन का पहला खोज कार्य इसी क्षेत्र में होता। बाद में मोइसन ने कार्बनिक रसायन में खोज कार्य न करने का निश्चय किया। देहरें ने मोइसन को ऐसा करने से मना किया पर वह उसे अपने निश्चय से न डिगा सका। मोइसन

मादाम क्यूरी

हेनरी मोइसन

विलियम हेनरी पर्किन

ने अकार्वनिक रसायन में खोज कार्य करना आरम्भ किया। उस वक्त यह समझा जाता था कि अकार्वनिक रसायन एक वजर भूमि है जिसमें खोज कार्य करने की कोइ गुंजायश नहीं। मोइसन ने कहा — कुछ हर्ज नहीं, ऊसर जमीन में भी पैदावार की जा सकती है।

मोइसन का सारा खोज कार्य प्रयोगों से सम्बंध रखता है। सन् १८७९ में मोइसन को क्रोमियम के ओपिदों के बारे में खोज कार्य पर डाक्टर की उपाधि मिली। सन १८८२ में मोइसन ने ल्यूसा को पुत्री लियानी से विवाह किया। ल्यूसा ने मोइसन का आर्थिक संकट भी दूर कर दिया। मोइसन का गृह जीवन बड़ा सुखी था। मोइसन कहा करता था —' यदि मैं प्रयोग शाला में न रहूँ तो अपने घर पर रहना चाहूँगा '

सन् १८८४ में मोइसन ने प्लविन् (F uorine गैस का पृथक् करण करने में सफलता प्राप्त की। सन १८८६ में देब्रे ने मोइसन की तरफ से फ्रेंच एकेडमी को इस बात की सूचना दी। एकेडमी के सभापति ने बर्थेलोट, देब्रे और फ्रेमी को इस बारे में जाँच करके रिपोर्ट पेश करने के लिये नियुक्त किया। इनकी उपस्थिति में मोइसन प्लविन प्राप्त न कर सका। उसने बार बार प्रयत्न किया पर प्लविन कहाँ ? दूसरे दिन नये पदार्थों के प्रयोग ने इस कठिनाई को दूर कर दिया। मोइसन ने प्लविन प्राप्त की। इस पर एकेडमी ने मोइसन को १०,००० फ्रैंक का पुरस्कार दिया।

एरिजोना में डा० फुट ने यह बतलाया कि एक उल्का में बहुत महीन हीरे मौजूद हैं। मोइसन ने इस से यह अंदाज लगाया कि ये हीरे बहुत भारी दबाव के परिणामस्वरूप साधारण कार्बन से बने हैं। मोइसन ने कुछ लोहे में कार्बन मिलाकर उसे अपनी बनाई हुई बिजली की भट्टी में गर्म किया। ४०٠٠ शताशमेंड पर लोहा मोम की तरह पिघल गया और उसने कार्बन को अपने में घोल लिया। कुछ देर बाद इस पिघले हुए मिश्रण को ठंडे पानी में डाला गया इससे लोहे की बाहरी सतह भीतरी भाग की अपेक्षा बहुत शीघ्र ठंडी होगई। फलत भीतरी भाग पर जो अर्भ तक द्रवरूप में था, बहुत जबर्दस्त दबाव पड़ा। इससे कार्बन का कुछ भाग हीरे के छोटे छोटे टुकड़ों मे परिणत होगया। इन हीरों का रग कुछ काला था और वे पूरी तरह से पारदर्शक भी न थे। इन की कठोरता हीरे के बराबर थी।

यद्यपि हीरे को कृत्रिम रीति से बनाना एक वैज्ञानिक सत्य है फिर भी व्यावसायिक दृष्टि से यह रीति सफल नहीं कही जा सकती। हीरे का छोटा आकार और उसके बनाने की कीमत अधिक होने के कारण अभी तो वैज्ञानिक प्रकृति से होड़ नहीं लगा सकेंगे।

हीरे का कृत्रिम रीति से तैयार किया जाना एक नई बात थी। इसलिये समाचारपत्रों में बहुत अरसे तक इसकी चर्चा रही। कई पत्रों ने तो यहां तक कहा -हेनरी

मोइसन इतनी आसानी से हीरे बना लेते हैं कि थोड़े ही अरसे में, वे खाली माँगने मात्र से ही मिलने लगेंगे। फिर भला दक्षिणी अफ्रीका की द' बियर्स कपनी क्या करेगी?

मोइसन ने कार्बिनों के बारे में भी खोज काय किया। उसने यह बतलाया कि कर्बिदों पर जल की क्रिया से कइ उदकार्बन बनते हैं जो मिलाये जाने पर पेट्रोलियम बनाते हैं। मोइसन ने कारबरदम (सिलिकन कर्बिद) भी तैयार किया पर उसे कोई महत्व प्रदान नहीं किया।

सन् १९०० मे मोइसन पेरिस विश्वविद्यालय में अकार्बनिक रसायन का अध्यापक नियुक्त हुआ। सन् १८९६ में मोइसन को डेवी पदक प्राप्त हुआ और सन १९०६ में उसे रसायनशास्त्र का नोबल पुरस्कार मिला। मोइसन का भाषा पर पूरा अधिकार था। वह एक बड़ा अच्छा वक्ता था।

सन् १९०७ में मोइसन का देहान्त हो गया। मोइसन का कहना है—मेरी जिन्दगी बहुत ही सादी रही—अपनी प्रयोगशाला और घर में सुखी जीवन बिताया। यह देखा गया है कि वैज्ञानिकों का गृह-जीवन बड़ा सुखी रहा है। इसका कारण सभवत यह है कि कार्यशील होने के कारण उन्हें रसिक बनने का अवसर नहीं मिलता। सन् १९१५ म मोइसन का इकलौता लड़का युद्धक्षेत्र मे मारा गया।

रग विहीन हीरे लगभग शुद्ध कार्बन होते हैं। इन्हे गहनों मे जड़ने के लिये हीरे के चूरे से काटा

जाता है। हीरा कठोरतम पदार्थ है। इस पर रासायनिक पदार्थों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। हीरे का जलाने पर पहले कार्बन एकोपिद और बाद में कार्बन द्विओपिद बनता है। सबसे प्रसिद्ध हीरा कोहनूर है जो आजकल ब्रिटिश राजघराने की संपति है। इसका मूल्य एक लाख पौंड आका जाता है।

ग्रेफाइट— ग्रेफाइट एक नरम खनिज है। इसका उपयोग पेंसिल बनाने म किया जाता है। लेड पेंसिल नाम भ्रामक है क्योंकि इसमें सीसे का प्रयोग नहीं किया जाता। ग्रेफाइट बिजली का सुचालक है। यह बहुत ऊंचे तापक्रम पर जलता है। ग्रेफाइट ऐसे लोहे पर जो काफी ज्यादा गर्म किया जाता हो, पालिश करने के काम में आता है। यह लंका में काफी मात्रा में पाया जाता है।

कोयला—अमणिभ कार्बन के लकड़ी का कोयला काजल, हड्डी का कोयला, पत्थर का कोयला आदि कई रूप हैं। ये सब काले और अपारदर्शक होते हैं। लकड़ी का कोयला गड्ढों या बंद बर्तनों में लकड़ियों को जलाकर प्राप्त किया जाता है। बंद बर्तनों में से हवा निकाल कर उनमें लकड़िया रख दी जाती हैं और फिर उन्हें बाहर से गर्म किया जाता है। वाष्पशील द्रव पदार्थ एकत्र कर लिये जाते हैं और गैस बर्तनों को गर्म करने के काम में ली जाती है। द्रव पदार्थों में पायरोलिगनियस अम्ल और तारकोल होता है। पायरोलिगनियस अम्ल से दारिल मद्य

(Methyl alcohol) और सिरकोन (Acetone) अलग कर लिये जाते हैं।

हड्डी का कोयला लोहे के बद बर्तनों में अस्थियों के स्रावण से प्राप्त होता है। वाष्पशील द्रव में अमोनिया गैस और हड्डी का तैल होता है। इसमें लगभग दस प्रतिशत कार्बन होता है। काजल कार्बन का शुद्ध रूप है। यह तारपीन तारकोल आदि को सीमित वायु में जला कर धुंए को एकत्र करने से प्राप्त होता है। यह छापने की स्याही बनाने के उपयोग में आता है।

पत्थर का कोयला - यह भूतकाल में वृक्षों के सीमित वायु में जमीन के भीतर खंडित होने से बनता है। पहले पीट फिर लिग्नाइट (भूरा कोयला) और बाद में बिटूमिनस कोयला बनता है। भूरा कोयला पीट की अपेक्षा अधिक घना होता है। बिटूमिनस कोयला साधारण पत्थर क कोयला है।

भूरे कोयले, में नमी काफी मात्रा में होती है और इसको आंच लयी और धुंए से भरी हुई होती है। बिटू-मिनस कोयला तेज धुंएदार आंच देता है। बिटूमिनस कोयला आगे चल कर एथ्रेसाइट में परिणत होता है। इस मे सब से अधिक मात्रा में ताप पैदा होता है। एथ्रेसाइट कोयले से ग्रेफाइट बनता है।

हवा की अनुपस्थिति में कोयले को जलाने के बाद जो बाकी बच रहता है वह कोक कहलाता है। इसमें कार्बन काफी मात्रा, में रहता है। लोहे और फौलाद के

बनाने में कोक का प्रयोग किया जाता है।

कोयला एक उपयोगी ईंधन है। न केवल घरेलू कामों में अपितु व्यावसायिक कारखानों में कोयला एक आवश्यक ईंधन है। घरेलू कामों में कई लोग गोबर के कंडों का उपयोग करते हैं। गोबर ऐसी वस्तु नहीं है जिसे जला कर नष्ट कर दिया जाय। गोबर का उपयोग खाद के रूप में करना चाहिये। ईंधन के रूप में उसे जला कर हम उसमें वर्तमान नत्रेतों को नत्रजन के रूप में परिणत कर वायुमण्डल में मिला देते हैं। इस तरह से एक उपयोगी खाद नष्ट हो जाती है। गोबर के स्थान पर हमें लकड़ी एवं कोयला जलाना चाहिये।

ईंधन के रूप में हम अधिकतर लकड़ी, पेट्रोल और कोयले का उपयोग करते हैं। ये तीनों न केवल ईंधन का ही काम देते हैं अपितु हमारे दैनिक जीवन में काम आने वाले बहुत से बहुमूल्य पदार्थ इन्हीं से प्राप्त होते हैं।

लकड़ी में अधिकांश छिद्रान (Cellulose) और वाकारस होता है। छिद्रोज एक विषम कर्बोदित है। इसे सीमित वायु में जलाने पर लकड़ी का कोयला बनता है। लकड़ी का कोयला इसकी अपेक्षा कहीं अधिक उपयुक्त ईंधन है। लकड़ी के विच्छेदक स्रावण (Destructive distillation) से मिथिल मद्य प्राप्त होता है। इसका उपयोग रंग, सुगन्धित पदार्थ और ओषधियों के तैयार करने में किया जाता है। दारिल मद्य का ओषदीकरण करने से फार्मेल्डीहाइड बनती है। इसके कृत्रिम राल (गधाविराजा)

तैयार की जाती है जो वेकेलाइट कहलाती है। लकड़ी से कागज भी बनाये जाते हैं। लकड़ी के टुकड़े करके उन्हें दाहक सैंधा (Canstio Soda) के घोल में गरम किया जाता है। सस्ते कागज के लिये खटिकम द्विगंधित (Calcium Bisulphite) में लकड़ी के गूदे को उबालते हैं। इसके बाद रेशों को पानी से धो लिया जाता है। इसके पश्चात् रंगविनाशक चूर्ण द्वारा लकड़ी का रंग नष्ट कर दिया जाता है। इसके बाद रेशों को पीटा जाता है। यदि रंगीन कागज बनाना हो तो उसमें रंग मिला दिया जाता है। कागज को भारी बनाने के लिये वेरियम गंधेत, खड़िया, मिट्टी, श्वेत सार (Starch) व गोंद का उपयोग किया जाता है। कागज को रोजिन साबुन डाल कर चिपचिपा बना दिया जाता है। गूदे और पानी को कपड़ों के छन्ने में डाल कर अलग कर लिया जाता है। गूदे की पतली परत को वेलनों से दबाया जाता है और फिर उस पर गर्म वेलन फेरे जाते हैं। इससे कागज चिकना हो जाता है।

पेट्रोलियम खनिज तैल है। इसमें कई उदकार्बनों का मिश्रण होता है। इसको स्रावण द्वारा कई भागों में विभाजित कर लिया जाता है। पेट्रोल या गैसोलीन जो ४०° से १८०° शताशांश पर प्राप्त होता है, बहुत अधिक मात्रा में मोटरों और हवाई जहाजों के चलाने के काम में आता है। पेट्रोल की खपत लगभग दस अरब गैलन प्रति वर्ष है।

बनाने में कोक का प्रयोग किया जाता है।

कोयला एक उपयोगी ईंधन है। न केवल घरेलू कामों में अपितु व्यावसायिक कारखानों में कोयला एक आवश्यक ईंधन है। घरेलू कामों में कई लोग गोबर के कंडों का उपयोग करते हैं। गोबर ऐसी वस्तु नहीं है जिसे जला कर नष्ट कर दिया जाय। गोबर का उपयोग खाद के रूप में करना चाहिये। ईंधन के रूप में उसे जला कर हम उसमें वर्तमान नत्रेतों को नत्रजन के रूप में परिणत कर वायुमंडल में मिला देते हैं। इस तरह से एक उपयोगी खाद नष्ट हो जाती है। गोबर के स्थान पर हमें लकड़ी एवं कोयला जलाना चाहिये।

ईंधन के रूप में हम अधिकतर लकड़ी, पेट्रोल और कोयले का उपयोग करते हैं। ये तीनों न केवल ईंधन का ही काम देते हैं अपितु हमारे दैनिक जीवन में काम आने वाले बहुत से बहुमूल्य पदार्थ इन्हीं से प्राप्त होते हैं।

लकड़ी में अधिकांश छिद्राज (Cellulos और बाकी रस होता है। छिद्रोज एक विषम कर्बोदेत है। इसे सीमित वायु में जलाने पर लकड़ी का कोयला बनता है। लकड़ी का कोयला इसकी अपेक्षा कहीं अधिक उपयुक्त ईंधन है। लकड़ी के विच्छेदक स्रावण (Destructive distil- latio) से मिथिल मद्य प्राप्त होता है। इसका उपयोग रंग, सुगन्धित पदार्थ और ओषधियों के तैयार करने में किया जाता है। हारिल मद्य का ओषदीकरण करने से

पिघलने वाले उदकार्बनों में परिणत हो जाते हैं। अब इसका उपयोग पेट्रोल के स्थान पर किया जा सकता है। चौथे भाग में गाढ़े द्रव और ठोस उदकार्बन होते हैं। इसको ठंडा करने पर ठोस पदार्थ अलग हो जाते हैं। इनसे मोम तैयार किया जाता है। द्रव तैल स्निग्धीकरण के लिये काम में लिये जाते हैं। बचा हुआ भाग सड़कों क बनाने के काम में आता है।

तैल प्रस्तरों से भी पेट्रोलियम प्राप्त किया जा सकता है। इन प्रस्तरों में पेट्रोलियम काफी मात्रा में होता है पर उसे प्राप्त करने में बहुत खर्च पड़ता है। भूतत्त्व विशारदों का कहना है कि यदि पेट्रोलियम के खर्च का परिमाण यही बना रहा तो आगामी पन्द्रह बीस साल में ही ससार का सारा का सारा पेट्रोल समाप्त हो जायगा। उस वक्त सभव है तैल प्रस्तरों से पेट्रोलियम प्राप्त किया जाय।

मोम से मोमबत्तियाँ बनाई जाती हैं। आजकल अधिकतः मोमबत्तियाँ पैरेफीन मोम, स्टियरिक अम्ल और चर्बी के मिश्रण से बनाई जाती है।

औद्योगिक व्यवसायों की उन्नति बहुत कुछ कोयले पर निर्भर है। कोयला जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, लकड़ी से बनता है। घरेलू कामों में हम बिटूमिनस कोयले का उपयोग करते हैं। कोयले को जलाने पर हम उससे प्राप्त होने वाले ताप का आधा उपयोग भी नहीं कर पाते। वाष्पशील पदार्थ धुएँ के रूप में उड़ जाते हैं। यह धुआ सूर्य से प्राप्त होने वाले नील-

पेट्रोलियम की उत्पत्ति लकड़ियों, मछलियों और समुद्री जानवरों के मृत शरीर के विन्छेदन से होती है। इनसे पेट्रोलियम कइ युगों के पश्चात् बनता है। पेट्रोल बर्मा और लंका में काफी परिणाम म मिलता है। रूस और अमेरिका में पेट्रोल के बहुत से कूए हैं। पेट्रोलियम का लाहे के वर्त्तनों में आंशिक स्रावण किया जाता है। निश्चित तापक्रमों पर भाप को ठंडा करके द्रवीभूत करते हैं। इस तरह कई भाग अलग अलग किये जाते हैं। पहले भाग में पेट्रोल होता है। इसमें कुछ नफ्था भी मिला हुआ होता है। नफ्था शुष्क रीति से धोने और वार्निश करने में घोलक का काम देता है। दूसरे भाग से मिट्टी का तैल प्राप्त होता है। जो फिर से स्रावण किया जाकर लालटेन वगैरह के जलाने के काम में प्रयुक्त होता है। पहले मिट्टी का तैल ही बहुमूल्य पदार्थ समझा जाता था। उस वक्त लोग इसमें पेट्रोल मिला दिया करते थे जिससे आये दिन आकस्मिक दुर्घटनाएँ हो जाया करतीं थीं। आजकल पेट्रोल मिट्टी के तैल से कहीं अधिक मूल्य वान् होता है। इसलिये इस बात की आशंका ही नहीं की जा सकती कि कोई मिट्टी के तैल में पेट्रोल मिलाने की गलती करेगा। पेट्रोलियम के स्रावण से प्राप्त तीसरा भाग गैस तैल कहलाता है। यह काफी गाढा होता है। इसे भंजन विधि द्वारा लगभग ४०० शताशमेड तक सौ पाउड प्रति वर्ग इच के दबाव पर गर्म किया जाता है। इससे ऊँचे तापक्रम पर पिघलने वाले उदकार्बन निम्न तापक्रम पर

अमोनिया भी बनता है। अमोनिया से अमोनियम गधेत बनाया जाता है जो एक उपयोगी खाद है। एक टन कोयले से एक हंड्रेडवेट के बराबर तारकोल प्राप्त होता है। तारकोल से दो सौ विभिन्न पदार्थ प्राप्त होते हैं। तारकोल को वायुरोधक वर्त्तना में डाल कर धीरे धीरे गर्म करते हैं। विभिन्न तापक्रमों पर प्राप्त होने वाली भाप को द्रवीभूत करके अलग अलग रख देते हैं। पहला भाग हलका तैल कहलाता है। इसमें बेंजीन, टोलीन और जाइलीन का मिश्रण होता है। बाद में स्रावण द्वारा ये अलग अलग कर लिये जाते हैं। एनिलीन रग इन्हीं से बनता है। टोलीन का उपयोग त्रिनत्रो टोलीन नामक विस्फोटक पदार्थ के बनाने में किया जाता है। टोलीन से सकेरीन नाम का मधुर पदार्थ भी बनाया जाता है जो शक्कर से कई गुना मीठा होता है। यह एक बिलकुल निर्दोष वस्तु है, परतु शरीर में इसका पाचन नहीं होता। बेंजीन और टोलीन के मिश्रण से बेंजोल बनता है जो मोटरों के चलाने में प्रयुक्त होता है।

तारकाल का दूसरा भाग मध्य तैल कहलाता है। इसमें मुख्यत: कार्बोलिक अम्ल और नफ्थलीन होती है। इनका उपयोग रगों के बनाने में किया जाता है। कार्बोलिक अम्ल एक उपयोगी निसक्रामक है। इससे पिक्रिक अम्ल बनता है। यह पीले रग का होता है और इससे विस्फोटक पदार्थ तैयार किये जाते हैं।

लोहितोत्तर प्रकाश को बहुत कम कर देता है। यह कहना अनावश्यक है कि हमारे स्वास्थ्य के लिये नील लोहितोत्तर प्रकाश बहुत आवश्यक है। धुएँ में वर्तमान अम्ल पौधों को भी हानि पहुँचाते हैं। यही नहीं कोयले का धुँआ मकानों की ईंटों और चूने को कमजोर बना देता है। इसलिये यह एक समस्या है कि किस तरह से बिना धुएँ के आवश्यक ताप प्राप्त का जाय। बिजली से ताप प्राप्त करने पर धुएँ की समस्या अपने आप सुलझ जाती, है पर यह बहुत महँगी पड़ती है।

कोयले की गैस का यदि ईंधन के रूप में उपयोग किया जाय तो धुंए से छुटकारा हो सकता है। इसके लिये कोयले को मिट्टी के बने वर्तनों में गर्म किया जाता है। हवा की अनुपस्थिति में कोयला नहीं जलता पर उसका विच्छेदन होकर बहुत सारे गैसीय पदार्थ बन जाते हैं। ये नलिकाओं में ले जाये जाकर जलाने के काम में लिये जाते हैं। बाकी बचा हुआ पदार्थ कोक होता है। यह जलाये जाने पर धुआ नहीं देता पर इसे जलाना भी एक टेढ़ी खीर है। औसत गैस में ५००–६०० यूनिट प्रति घनफुट गर्म करने की शक्ति होती है।

तारकोल को पहले फेंक दिया जाता था परंतु आजकल उससे बहुत से बहुमूल्य और उपयोगी पदार्थ तैयार किये जाते हैं। कोयले की गैस बनाने पर

कोयले की करामात—२

रग--प्राचीन काल में टायरिन बैंजनी रग को छोड कर लगभग सारे रंग पेड-पौधों से प्राप्त किये जाते थे। ऐसे रगों में नील और मजीठ का रग मुख्य है। पेड-पौधों से रंग समय विशेष पर ही मिल सकते हैं। यही नहीं इनकी खेती के लिये खास जमीन और काफी परिश्रम की आवश्यकता होती है। इस पर भी ये इतने परिमाण में उत्पन्न नहीं होते जिससे सारे ससार की आवश्यकता की पूर्ति की जा सके। अनावृष्टि, तुपारपात एवं विनाशकारी कीडों से कभी कभी सारी की सारी उपज मारी जाती है। यह सब बात रसायनवेत्ताओं को अखरी और फल स्वरूप उन्होंने कृत्रिम रग बनाने का प्रयत्न शुरू किया।

रगों के इतिहास में सन १८५६ एक युगातरकारी वर्ष है। इस वर्ष विलियम हेनरी पर्किन ने पहले कृत्रिम

नफ्थलीन की गोलियाँ रेशमी और ऊनी वस्त्रों को कीड़ों से बचाती हैं। नफ्थलीन से कृत्रिम नील रंग बनाया जाता है।

तारकोल का तीसरा भाग भारी तैल है। यह ऐसे यौगिकों का मिश्रण होता है जो अलग अलग नहीं हो पाते। लकड़ी को सुरक्षित रखने में भारी तैल का प्रयोग किया जाता है। तारकोल का अंतिम भाग "एंथ्रेसिन तैल" कहलाता है। इससे एलिजेरिन रंग बनता है। बर्तनों में बाकी बचा हुआ भाग सड़कों के निर्माण में काम आता है।

कोलतार से प्राप्त पदार्थों से लगभग पंद्रह सौ यौगिक बनाये जाते हैं। इनमें से अधिकतर रंग होते हैं बाकी सुगंधित पदार्थ, एसेंस, औषध, प्रतिविष और विस्फोटक पदार्थ हैं। निम्न तापक्रम पर कार्बनीकरण करने से कोनाइट पदार्थ बच रहता है जो जलाये जाने पर धुँआ नहीं देता।

कोयले के कार्बनीकरण से न केवल धूम्रहीन ईंधन ही प्राप्त होता है प्रत्युत औद्योगिक व्यवसायों के लिये बहुत से उपयोगी पदार्थ तैयार किये जा सकते हैं जो अन्यथा धुएँ के रूप में नष्ट हो जाते हैं। कोयले की गैस कुछ महँगी पड़ती है पर ये सब सुविधाएँ देखते हुए इसका प्रयोग वाञ्छनीय है।

कोयले की करामात--२

रग--प्राचीन काल में टायरिन बैंजनी रंग को छोड़ कर लगभग सारे रंग पेड़-पौधों से प्राप्त किये जाते थे। ऐसे रगों में नील और मजीठ का रग मुख्य है। पेड़-पौधों से रग समय विशेष पर ही मिल सकते हैं। यही नहीं इनकी खेती के लिये खास जमीन और काफी परिश्रम की आवश्यकता होती है। इस पर भी ये इतने परिमाण में उत्पन्न नहीं होते जिससे सारे ससार की आवश्यकता की पूर्ति की जा सके। अनावृष्टि, तुषारपात एव विनाशकारी कीड़ों से कभी कभी सारी की सारी उपज मारी जाती है। यह सब बात रसायनवेत्ताओं को अखरी और फल स्वरूप उन्होंने कृत्रिम रग बनाने का प्रयत्न शुरु किया।

रगों के इतिहास में सन १८५६ एक युगातरकारी वर्ष है। इस वर्ष विलियम हेनरी पर्किन ने पहले कृत्रिम

रग-एनिलिन रंग- को मालूम किया। उस वक्त हेनरी पर्किन अट्ठारह साल का था। वह अशुद्ध एनिलीन तैल से कुनैन बनाने का प्रयत्न कर रहा था। उसे प्रयोग करते समय तारकोल के समान एक काला पदार्थ मिला। पर्किन की जगह यदि कोई दूसरा व्यक्ति होता तो वह समवतः उसे फेंक देता। पर्किन ने यह मालूम किया कि उससे बैंजनी रंग का पदार्थ प्राप्त किया जा सकता है। यह रग मॉव या मेजटा कहलाता है और एनिलीन से प्राप्त किया जाता है। प्रकृति ने पेड़ों में, रगने वाले पदार्थ उत्पन्न किये और इधर रसायनवेत्ता अपनी प्रयोगशाला में अपने अलग रग तैयार करने लगे।

इसके पश्चात् पर्किन, प्राबे और लीबरमैन ने एलिजेरिन या तुर्की लाल रग तैयार किया। यह रंग एंथ्रेसिन से तैयार किया जाता है। प्रकृति में यह रग मजीठ में पाया जाता है। आजकल यह कृत्रिम रूप में इतने अधिक परिमाण में तैयार किया जाता है कि कोई मजीठ से इस रंग को प्राप्त करने की सोचता भी नहीं। कृत्रिम रंगों का व्यवसाय जर्मनी में बहुत फैला। इंगलैंड और अमेरिका में भी पिछले महायुद्ध के पश्चात् कृत्रिम रग बड़े स्केल पर तैयार किये जाने लगे।

रगने वाले पदार्थों का रग अणुओं में परमाणुओं के परस्पर सबद्ध होने के ढंग और कई परमाणु समूह की उपस्थिति पर निर्भर होता है। सारे रंगीन पदार्थों को कपड़ों के रंगने के काम में नहीं लेते। रंगों को तीन

श्रेणियों में विभक्त किया गया है—सरल रंग, वर्ण वेधक रंग और टकी के रंग।

सरल रंगों को पानी में घोल कर कपड़ों को सरलतापूर्वक रंगा जा सकता है। वर्णवेधक रंगों से वस्त्रों को रंगने के लिये फिटकरी या कसीस वर्णवेधकों के मिलाने की जरूरत पड़ती है। ये रंगवेधक वस्त्रों पर बैठ कर रंग से मिलने पर तेज रंग बना देते हैं जिससे वस्त्र रंगे जा सकें। वर्णवेधक रंगों में एलिजेरिज मुख्य है। फिटकरी के साथ लाल और लोहे और क्रोमियम के ओषिदों के साथ बैंजनी व भूरा रंग तैयार होता है। टकी के रंग स्थायी पर महंगे होते हैं। ये रंग पानी में कठिनाई से घुलते हैं। ऐसे रंगों में नील का रंग मुख्य है। इसे पानी में छोड़कर कोई लघ्वी कारक पदार्थ मिलाया जाता है। इससे रंग-विहीन पदार्थ बन जाता है। ऐसा पदार्थ पानी में आसानी से घुल जाता है। कपड़े पर उसका घोल चढ़ा कर धूप में सुखा दिया जाता है। हवा में वर्तमान ओषजन रंग विहीन पदार्थ के साथ मिलकर इसे पूर्ववत् रंगीन बना देता है।

उन्नीसवीं शताब्दी में भारतवर्ष में नील रंग की खेती उन्नति की पराकाष्ठा पर थी। सन् १८८० में जर्मनी के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक बायर ने कृत्रिम नील रंग तैयार किया। यह कृत्रिम नील रंग नफ्थलीन से तैयार किया जाता है। सन् १८९७ में यह रंग व्यापारिक परिमाण

में तैयार किया जाने लगा। इससे भारतवर्ष म होने वाली नील की खेती को बड़ी ठेस पहुँची।

सुगंधित पदार्थ—बहुत से पौधा में कई ऐसे पदार्थ होते हैं। जिनमें तेज महक होती है और जो पानी में बहुत कम घुलते मिलते हैं। ऐसे पदार्थ सुगंधित तैल कहलाते हैं। सुगंधित पदार्थों का उपयोग अधिकतः शौक के कारण किया जाता है पर ये स्वास्थ्य पर भी अच्छा प्रभाव डालते हैं। पत्तियों, फूलों और फलों की गंध उनमें वर्तमान तैल के कारण है। एसेंस इन्हीं से तैयार किये जाते हैं। सुगंधित तैलों का उपयोग औषध विज्ञान में भी किया जाता है। पिपरमेंट, दारचीनी का तैल पत्तियों से, लवेंडर, चमेली, गुलाब, केवड़ा, गुलनार का तैल फूलों से और नींबू एवं नारंगी के तैल फलों से निकाले जाते हैं।

फूलों से सुगंधित तैल निकालने के लिये उन्हें क्लोरोफार्म में डाला जाता है। क्लोरोफार्म तैल को अपने में घोल लेता है। इसके बाद क्लोरोफार्म का कम किये हुए दबाव में वाष्पीभवन किया जाता है। इससे शुद्ध एसेंस बच रहता है। दूसरी विधि में पौधे का भाप से सेका जाता है। इसमें तैल भाप के साथ मिल जाता है। बाद में भाप द्रवीभूत की जाती है। यह भाप-स्रावण की विधि आसान और सुविधा जनक है। नींबू का तैल छिलके को दबाकर प्राप्त किया जाता है।

भाप स्रावण विधि द्वारा प्राप्त गुलाब के इत्र की महक

ताजे गुलाब के फूल की गंध जैसी नहीं होती। सुगंधित पदार्थों को तैयार करने में यह जानना आवश्यक होता है कि कई पदार्थों को विभिन्न परिमाण में किस तरह से मिलना चाहिये जिससे इच्छित महक प्राप्त हो जाय।

रसायनज्ञों ने कई ऐसे पदार्थ खोज निकाले हैं जो प्रकृति में तो नहीं मिलते पर उनमें अच्छी गंध होती है। ऐसे यौगिकों को पौधों से प्राप्त इत्र या तैलों में मिलाने से मनमोहक सुगंध प्राप्त हो जाती है। आज कल सुगंधित पदार्थों में इन दोनों का मिश्रण होता है। सिट्रोनेला का तैल एक अनुपयोगी पदार्थ है परंतु इससे जिरेनियोल नाम का एक बहुत ही महकदार इत्र तैयार किया जाता है। यह पदार्थ गुलाब के तैल में पाया जाता है।

नींबू के तैल में एक अवांछित महकदार पदार्थ होता है जिसे सिट्रल कहते हैं। इससे आयोनोन बनता है जो बैंजनी रंग का बढ़िया इत्र है। स्वाभाविक बैंजनी रंग का इत्र बहुत महँगा और बड़ी कठिनाई से मिलता है। अतः आज कल सर्वत्र आयोनोन का ही उपयोग किया जाता है। तारपीन से तरपियोनोल नाम का बढ़िया सुगंधित इत्र बनाया जाता है। लौंग के तैल से वेनिलीन प्राप्त किया जाता है यद्यपि आज कल अधिकतः इसे कोलतार से ही बनाते हैं। गुलाब के इत्र में वास्तविक गुलाब जैसी महक लाने के लिये फिनिल इथिल मद्य डाल दिया जाता है।

कृत्रिम मुश्क का उपयोग दूसरे सुगंधित पदार्थों की महक को ठीक करने में किया जाता है। यह टोलीन से बनाया जाता है। यह त्रिनत्रो ब्युटिल टोलीन है। इसकी महक वास्तविक मुश्क जैसी नहीं होती पर इसके सस्तेपन के कारण इसका खूब उपयोग किया जाता है।

औषध—औषध विज्ञान के क्षेत्र में भी रसायनज्ञों ने प्रकृति के साथ सहयोग किया है। रंग एवं सुगंधित पदार्थों की तरह बहुत सारी औषधियां पौधों से प्राप्त होती हैं। कोकेन कोका नामक पौधे की पत्तियों में पाया जाता है। यह एक बड़ा अच्छा स्थानीय संवेदना नाशक पदार्थ है पर यह जहरीला होता है। इसको सुई द्वारा शरीर में प्रविष्ट कराने से जलन पैदा होती है। खोज से यह मालूम हुआ है कि कोकेन में दो वर्ग मौजूद हैं। एक वर्ग पर संवेदना नाशक गुण और दूसरे पर विषमय प्रभाव अवलम्बित है। इससे लाभ उठाकर कई ऐसे यौगिक बनाये गये हैं जिनमें संवेदना नाशक वाला वर्ग तो मौजूद है पर दूसरा नहीं। ये पदार्थ बीटा-यूकेन और नोवोकेन हैं। आज कल स्थानीय संवेदना नाशक के रूप में इन्हीं का प्रयोग किया जाता है। ये पदार्थ प्रकृति में नहीं पाये जाते।

बीवार के पेड़ की छाल के सेवन से ज्वर मिट जाता है। इसका यह गुण इसमें वर्तमान सेलिसिन पदार्थ के कारण है। सेलिसिलिक अम्ल जिससे सेलिसिन बनता है, पेट में दर्द उत्पन्न करता है। अतः आज कल

एसिटिल-सेलिसिलिक अम्ल का जिसे एस्प्रिन कहते हैं, उपयोग किया जाता है। यह सर-दर्द को बहुत कम कर देता है।

एसेटेनिलाइड में शरीर के तापक्रम को कम करने की शक्ति है। इसलिये इसका उपयोग ज्वर को कम करने के लिये किया जाता है। एसेटेनिलाइड से शरीर के भीतर एनिलीन बनता है जो कुछ हानि पहुँचाता है। इसलिये इससे फीनेसिटिन नामक प्रसूत पदार्थ तैयार किया गया।

नि:सक्रामकों में क्लोरामीन, ओज़ोन, हरिन, गंधक द्विओषिद, फार्मल्डीहाइड, पाशुज परमैंगनेत, उदजन परौषिद, फीनोल आदि मुख्य हैं। मोरफीन नींद लाने वाला पदार्थ है। यह अफीम में पाया जाता है। इसका पश्चाद्गामी असर बहुत बुरा होता है। नींद लाने वाले कृत्रिम पदार्थों में गंधोनल एवं वीरोनल मुख्य हैं।

सुप्रसिद्ध जर्मन डाक्टर पाल एह्रलिख ने सालवरसन या '६०६' नामक जगत् प्रसिद्ध उपयोगी दवा की खोज की। यह आर्सेनिक का एक यौगिक है। आर्सेनिक के यौगिक रक्त में पाये जाने वाले कीटाणुओं को नष्ट तो कर देते हैं पर वे स्वयं जहरीले होते हैं। इसलिये उनका प्रयोग नहीं किया जा सकता। एह्रलिख ने ऐसी ओषधि तैयार करने का प्रयत्न किया जो कीटाणुओं को नष्ट तो कर दे पर स्वयं विषैली न हो। कई असफल प्रयत्नों के बाद उसने सालवरसन नामक पदार्थ तैयार किया। इसमें

ये सब गुण मौजूद हैं। यह ६०६ वा यौगिक था। इस लिये इसका नाम भी ६०६ पड़ गया। इसका उपयोग गर्मी, मलेरिया, निद्रारोग और पलटने वाले ज्वर म किया जाता है।

बायर २०५ नाम की एक और ओषधि बनी है। इसमें आर्सेनिक नहीं होता और यह कई रोगों के कीटाणुओं की वृद्धि को रोकती है। यह एक रंग से तैयार की जाती है। कीटाणुओं के शरीर में इस रंग का शोषण होता है जिससे वे मर जाते हैं।

कृत्रिम वस्त्र और भोजन—भोजन और वस्त्रों को रसायनशाला में तैयार कर लेना एक मनोरंजक परंतु बहुत ही कठिन काम है। कई सरल कर्बोदेत (Carbohydrates) तैयार किये जा सकते हैं परंतु इस क्षेत्र मे प्रकृति की बराबरी करना एक बड़ी विषम समस्या है। ई० सी० सी० बाली ने पानी में कार्बन द्विओषिद के घाल पर सूर्य के प्रकाश की प्रतिक्रिया से शर्करा बनाने में सफलता प्राप्त की है। इसलिये यह संभव मालूम होता है कि आगे चलकर भोज्य पदार्थ तैयार किये जा सकेंगे।

वसा भी कृत्रिम रूप में तैयार की जाती है परंतु प्रकृति की विधि से होड़ नहीं की जा सकती है। साधारण वसाम्लों में कार्बन के परमाणु युग्म सख्या में होने से शरीर में विच्छेदित होकर हानिकारक पदार्थ उत्पन्न करते हैं। उसलिये मधुमेह के रोगी वसामय भोजन को पचा

नहीं पाते। स्टियरिक अम्ल से इटारविन नामक पदार्थ बनाया गया है। इससे शरीर के भीतर कोई हानिकारक पदार्थ नहीं बनते।

सेकेरिन जिसका उल्लेख अन्यत्र किया जा चुका है, भोज्य पदार्थ नहीं गिना जा सकता। मधुमेह के रोगी इसका उपयोग बहुधा किया करते हैं क्योंकि वे साधारण शर्करा का उपयोग नहीं कर सकते। यह भोजन को मीठा बना देती है। सेकेरिन टोलीन से बनती है। चूंकि यह शरीर में पहुँच कर वैसी की वैसी बनी रहती है इसलिये इसे शर्करा का स्थानापन्न नहीं बनाया जा सकता।

कृत्रिम वस्त्रों का तैयार करना भी एक कठिन समस्या है। वर्तमान समय में कृत्रिम रेशम अवश्य तैयार किया जाता है। यह लकड़ी और रूई से बनाया जाता है। कृत्रिम रेशम विज्ञान के अनुसार रूई जैसा ही है क्योंकि यह छिद्रोज का एक रूप है। प्राकृतिक रेशम में फाइब्रोइन नाम का प्रोटीन होता है। यह कीड़ा द्वारा पाला जाता है। इसमें फाइब्रोइन का दुहरा धागा होता है। इसके दोनों भाग सेरिसिन द्वारा परस्पर चिपके हुए रहते हैं। कच्चे रेशम को साबुन के साथ उबालने में दोनों धागे अलग अलग हो जाते हैं। चूंकि रेशम तौल कर बेचा जाता है इसमें टिन फास्फेट मिला दिया जाता है जिससे यह भारी होजाता है। इससे रेशम कुछ कमजोर पड़ जाता है। अत, यह शास्त्र के ज्ञान का दुरुपयोग कहा जा

कृत्रिम रेशम कई तरह का होता है—

(१) ताम्र अमोनियम रेशम-रूई साफ की जाकर दाहक सैंधे के घोल में डुबोई जाती है। उसके बाद वह तांबे के यौगिक के अमोनिया के घोल में डाल दी जाती है जिससे वह घुल जाती है। उसे हलके तेजाब से धार के रूप में डालने से छिद्रोज के तार तार बन जाते हैं।

(२) नत्रो छिद्रोज को मद्य और ईथर में घोलकर एक महीन नली में से धार के रूप में पानी में निकालते हैं। मद्य और ईथर भाप बनकर उड़ जाते हैं और पीछे बहुत ही महीन और अटूट धागा बन जाता है। नत्रो छिद्रोज के ज्वलनशील होने कारण उसे अमोनियम गंधिद (Ammonium Sulphide) के घोल में मिलाते हैं। उसको नत्रो वर्ग दूर होजाता है और बचा हुआ पदार्थ रेशम के समान दिखाई देता है।

(३) लकड़ी के गूदे को दाहक सैंधे के घोल में मिलाकर उसे कार्बन द्विगंधिद (Carbon Bisulphide) में डालते हैं। इसमें गूदे का छिद्रोज जैंथाइट में परिणत हो जाता है। यह जैंथाइट पानी में घुलन शील होता है। इस घोल को थोड़ी देर पश्चात् महीन नलिकाओं में डालकर एक तेजाब से भरे बर्तन में धार के रूप में छोड़ा जाता है। यह तेजाब इसे एक अटूट और एक समान रेशे में परिणत कर देता है। इन केशों को धोकर धागों के रूप में कात लेते हैं।

(४) छिद्रोज एसिटेट कृत्रिम रेशम का एक दूसरा रूप है। उसे बनाने के लिये लकड़ी के गूदे या रूई को एसिटिक अम्ल के एसिटिक निरुदक (Anhydride) के तेज घोल में डालते हैं। साथ में थोड़ा सा गंधक का तेजाब भी मिला दिया जाता है। उससे छिद्रोज घुल जाता है। इस मिश्रण को पानी में डालने से सफेद लच्छे के रूप में छिद्रोज एसिटेट अवक्षिप्त हो जाता है। इसे छान कर धो लेते हैं और फिर सुखा कर एसिटोन में डालते हैं। इसमें यह घुल जाता है। इस तरह से प्राप्त गाढ़े घोल को गर्म हवा में महीन छिद्रों में से निकालने से एसिटोन भाप बनकर उड़ जाता है और छिद्रोज के महीन तन्तु बच रहते हैं।

छिद्रोज एसिटेट को कपूर के साथ मिलाने पर सेल्यूलॉयड का स्थानापन्न सेलोन बनता है। यह ज्वलनशील नहीं होता। इसलिये फिल्म व्यवसाय में इसका उपयोग किया जाता है।

कृत्रिम रेशम बनाने का व्यवसाय काफी उन्नति को पहुँच चुका है। सन् १९२७ में २७ करोड़ पाउंड कृत्रिम रेशम तैयार किया गया। ऊन में केरेटीन नामक प्रोटीन के तन्तु होते हैं। इसमें लगभग पाँच प्रतिशत गंधक भी होता है। रूई में केवल छिद्रोज होता है। रूई को दाहक सैंधे के तेज घोल में डालने पर मरसीराइज्ड रूई बन जाती है। यह रेशम की तरह चमकीली होती है और इस पर रंग आसानी से चढ़ता है। रूई के धागे चपटे होते हैं।

विपरीत रेशम के धागे बेलन के आकार के होते हैं।

कम दाम, आकर्षक रूप और शुद्ध अवस्था में टिकाऊ होने के कारण कृत्रिम रेशम की काफी माग है। फिर भी यह रेशम का स्थानापन्न नहीं हो सकता क्योंकि दोनों की उपयोगिता भिन्न-भिन्न है। सभव है, भविष्य में यह रेशम का भयंकर प्रतिद्वंद्वी बन जाय।